10/87

सोमसी

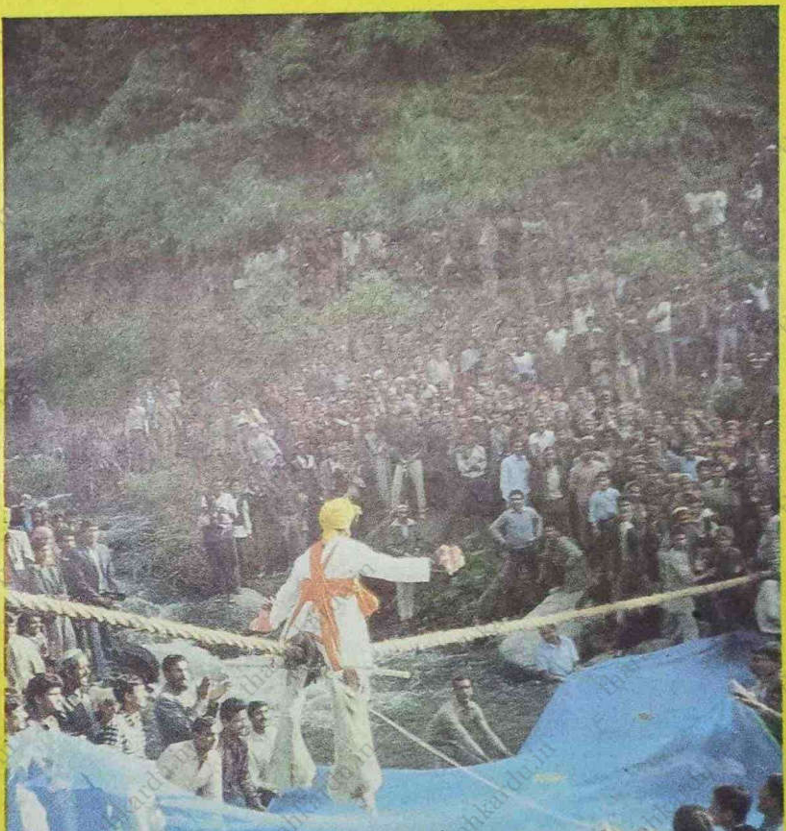

हिमाचल कला संस्कृति और भाषा अकादमी

tharahkardu.in

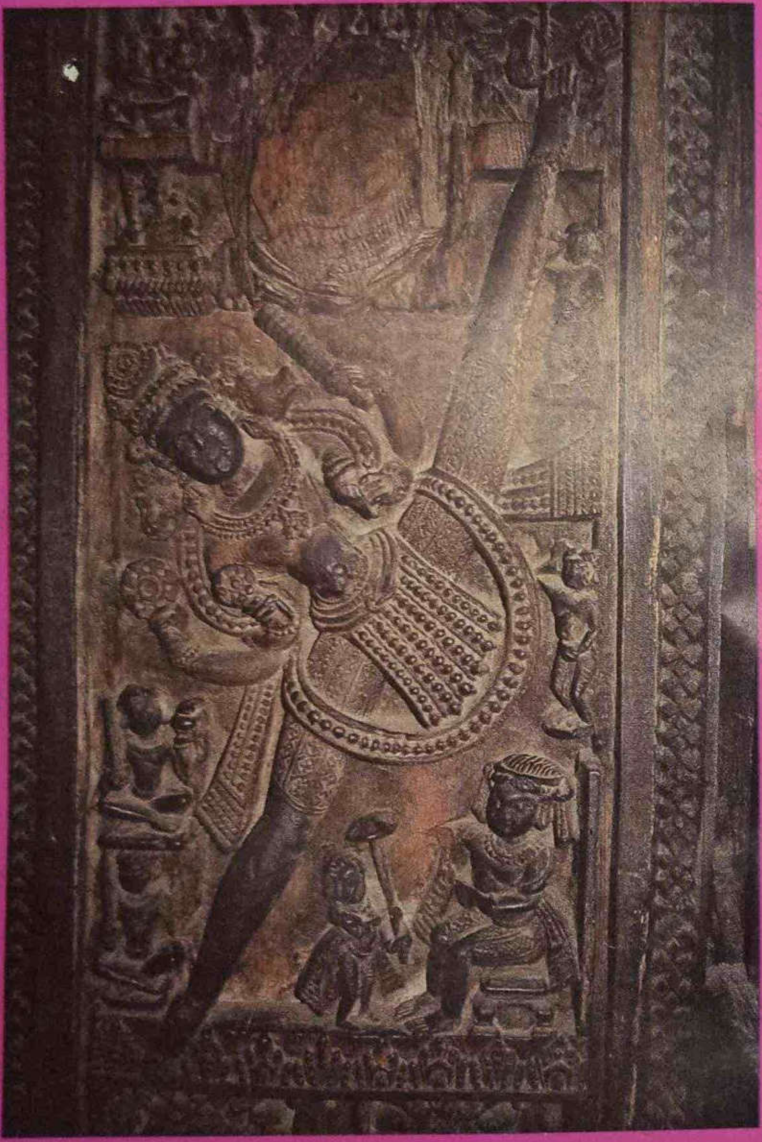

आवरण :-

भूण्डा उत्सव में रस्से पर सरकता हुआ बेड़ा : जाति का ज्याई (अकादमी संग्रह से)

ऊपर का चित्र :–

वामन अवतार काष्ठ कलाकृति : मृकुला मन्दिर, उदयपुर (लाहुल)

छाया- हाकम चन्द शर्मा (भाषा-संस्कृति विभाग के सौजन्य से)

वर्ष : 13 अंक : 4 पूर्णांक : 52
अक्तूबर 1987 : आश्विन-कार्तिक 1909 शक : 2044 (वि०)

सोमसी

पर्वतीय कला, संस्कृति और साहित्य की
त्रैमासिक शोध पत्रिका

सम्पादक
डॉ० बंशीराम शर्मा

हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी
संगरमल भवन, क्लिफ एण्ड एस्टेट, शिमला-171 001

tharahkardu.in

सम्पादक : डॉ० वंशीराम शर्मा,
सचिव,
हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी,
शिमला-171 001

त्रैमासिक : जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य

अंक : अक्तूबर, 1987

सम्पादन सहयोग : सरोज सांख्यायन

प्रूफ शोधन : निर्मल कौशल

पारदर्शियां : हाकम चन्द शर्मा

वार्षिक मूल्य—12/-
एक प्रति—3/-

प्राप्ति स्थान : हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी,
संगरमल भवन, क्लिफ एण्ड एस्टेट,
शिमला-171 001

विषय सूची

लेख	लेखक	पृष्ठ
हिमाचली शब्दकोश—सर्वेक्षण एवं विश्लेषण	डॉ० श्याम लाल	1
पट्टन घाटी (लाहुल) के कुछ मुख्य मेले-त्यौहार	बलराम	21
सराहन का देवता - सियाना ऋषि	डॉ० बलदेव ठाकुर	28
स्मृतियों के साये में डॉ० एम० एस० रंधावा	किशोरी लाल वैद्य	36
मण्डी जनपद– सिक्कों की जुबानी	डॉ० कमल के० प्यासा	43
हिमाचली संस्कृति और वेद व्यास	अमरदेव आंगिरस	49
राज कंवल	शबाब ललित	54
धरती माता की कनिष्ठा पुत्री का कथात्मक गीत	के० अंगरुप लाहुली	57
गद्दी नृत्य एवं लोक नाट्य	अमर सिंह रणपतिया	62
जमटा क्षेत्र में विवाह प्रथा	बाबू राम	68
बलिदान	सुरेन्द्र शर्मा	73
आराध्य देवी भीमा काली	नीना भण्डारी	75
मुख्यतया कबीर के सन्दर्भ में गोरखनाथ की विचारधारा का हिन्दी निर्गुण साहित्य पर प्रभाव	डॉ० वेद प्रकाश अग्नि	77
बिलासपुरी के परसर्ग	डॉ० देवेन्द्र काश्यप	80
भगवान परशुराम तथा जमलू	शरभानन्द श्रवण	87
रचनार्धामिता और पहाड़ीभाषा : एक सन्दर्भ	डॉ० पीयूष गुलेरी	96
हिमाचल प्रदेश के ब्रज कवि	गुलशन कुमार	99

सम्पादकीय

हिमाचल प्रदेश में गत वर्षों से सांस्कृतिक प्रचार–प्रसार तथा साहित्यिक योगदान के सम्बन्ध में उल्लेखनीय गतिविधियां संचालित हुई हैं। जागरण के इस काल में स्वैच्छिक संस्थाओं, कला तथा संस्कृति और साहित्य के पारखियों, समीक्षकों, शोधकर्ताओं तथा सरकार सम्बन्धित सरकारी विभागों और अकदमी का उल्लेख युक्ति संगत ही है। संक्रमण काल में सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्थाओं में बहुत स्पष्टता न होते हुए भी संस्कृति की आत्मा प्रछन्न रूप से सक्रिय रहती है। उस आत्मा को जानकर ही सांस्कृतिक धरोहर का अध्ययन अनुशीलन किया जाना सम्भव होता है। सांस्कृतिक पुर्नजागरण का अध्याय अनेक बार आरम्भ होकर मन्द होता रहता है परन्तु यह आत्मा किसी न किसी रूप में सक्रिय रहती है, ऐसा इतिहास का प्रमाण है। संस्कृति का मानक रूप तैयार किया जाना सम्भव नहीं है क्योंकि उसे सीमाओं में बांधना उसके साथ अन्याय होगा। वह तो ऐसी गंगा है जिसे भगीरथ की आवश्यकता नहीं है। वह अपनी सीमाएं स्वयं निर्धारित करती है और काल के अनुसार उनमें परिवर्तन परिवर्धन भी करती रहती है। सांस्कृतिक पुनर्जागरण के लिए पुरोधाओं ने जो कुछ भी किया उसमें उसके किसी अव्यक्त पहलू को उजागर करके समाज का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट करने का कार्य ही मुख्य रहा है। उदाहरण के लिए यह कहा जाना उपयुक्त होगा कि गणेश पूजा भारतीय संस्कृति का प्राचीन अनुवंशिक कृत्य रहा है। परन्तु स्व० बाल गंगाधर तिलक ने गणेश चतुर्थी को नवीन परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय एकता के साथ गुम्फित कर दिया जिसे नई सामाजिक अवधारणा का संबल मिला। दिल्ली में आयोजित अपना उत्सव तथा विभिन्न प्रदेशों से सम्बन्धित क्षेत्रीय सांस्कृतिक केन्द्रों द्वारा आयोजित उत्सव सांस्कृतिक पुनर्जागरण के लिए सहायक सिद्ध हुए हैं। यह हमारी बाह्यरूप संस्कृति के अवलोकन के लिए महत्वपूर्ण है। परन्तु सांस्कृतिक धारा के अन्तर्गत उपलब्ध निधि की ओर अभी तक विद्वानों तथा सामान्य जनता का ध्यान यथेष्ट रूप से आकृष्ट नहीं किया जा रहा है। इसके लिए शोधकर्ताओं, सामान्य जनों तथा सरकार को नई योजनाओं पर कार्य करने की आवश्यकता रहेगी।

सोमसी का यह अंक मुख्य रूप से प्रादेशिक संस्कृति को समर्पित है। इसमें पहाड़ी भाषा के शब्दकोश पर एक विस्तृत लेख डॉ० श्यामलाल डोगरा ने प्रस्तुत किया है। लाहुल-स्पिति क्षेत्र की संस्कृति पर दो लेख श्री बलराम तथा श्री के० अंगरूप लाहुली द्वारा लिखे गये हैं। पटन घाटी के मेले और त्यौहारों पर श्री बलराम का लेख परिचयात्मक होते हुए भी सारगर्भित है। श्री अंगरूप लाहुली ने धरती माता की कनिष्ठा पुत्री का कथात्मक गीत अनुवाद सहित प्रस्तुत किया है। इससे जहां लाहुली भाषा का किंचित् परिणाम प्राप्त होता है, वहां एक दुर्लभ गीत का संकलन भी दृष्टिगत होता है। सराहन का देवता स्याना ऋषि डॉ० बलदेव ठाकुर का ऐसा लेख है जिसमें आउटर सिराज की संस्कृति की सुन्दर झलक प्रस्तुत हुई है। पहाड़ी चित्रकला के अमर संग्राहक स्व० डॉ० एम० एस० रणधावा, पर किशोरी लाल वैद्य का संस्मरणात्मक लेख इस अंक की मनोरम उपलब्धि है। डॉ० कमल के प्यासा ने मण्डी जनपद के सिक्कों पर जानकारी पूर्ण लेख देकर संस्कृति के पुरातात्विक पक्ष को उजागर किया है। वेद व्यास पर अमरदेव आंगिरस का लेख, अमर सिंह रणपतिया का गद्दी नृत्य एवं लोक नाट्यों पर, सिरमौर के जमटा क्षेत्र में प्रचलित विवाह प्रथा पर बाबू राम का लेख तथा भीमा काली के सम्बन्ध में नीना भण्डारी की रचना के अतिरिक्त हिमाचल प्रदेश की नाथ परम्परा के सम्बन्ध में डॉ० वेद प्रकाश अग्नि का भी एक लेख है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत अक में प्रदेश की संस्कृति तथा विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में नई सामग्री उपलब्ध करवाने की चेष्टा की गई है। पत्रिका का अंक विलम्ब से प्रकाशित करने के लिए मुद्रण सम्बन्धी कठिनाईयों को दूर करने में हम असमर्थ रहे इसका हमें खेद है।

(डॉ०) बंशीराम शर्मा

हिमाचली शब्दकोश-सर्वेक्षण एवं विश्लेषण

□ डॉ० श्याम लाल

एकः शब्दः सुप्रयुक्तः सम्यग् ज्ञातः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति—

शब्द ब्रह्म की उपासना में उच्चारण तथा मनन किया एक शब्द स्वर्ग तथा इस लोक में मन की कामना पूर्ण कर आनन्ददायी होता है। ऐसा शब्द ब्रह्म वाक्य है। दृश्य और श्रव्य परम्परा में अनेक शब्दों के दर्शन और श्रवण करने की अभिलाषा मानव में चिरकाल से बनी हुई है। सुनने में अनेक शब्द आते हैं। ध्वनि परम्परा में कई श्रुतिमधुर तथा कुछ श्रुतिकटु कहलाते हैं। दर्शन में अनेक शब्द ओझल हो जाते हैं, क्योंकि प्रत्येक ध्वनि लिपिबद्ध नहीं की जा सकती है। यहां तक कि मौनी बाबा को भी कुछ बातें लिखकर और बहुत सी बातें इंगित चेष्टा से ही समझानी पड़ती हैं। महाभाष्यकार पतंजलि मुनि के विशद विश्लेषण के अनुसार शब्द तो थोड़े हैं, परन्तु अपशब्द अधिक हैं:—

भूयांसोऽपशब्दाः, अल्पीयांसः शब्दा इति। एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः तद् यथा—गौरित्यस्य शब्दस्य गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका—इत्यादयो बहवोऽपभ्रंशाः।

(महाभाष्य—पस्पशाह्निक)

ऐसी स्थिति में अपशब्द अथवा ग्राम्य शब्द कह कर अनेक शब्दों को दैनिक व्यवहार में तो लाया जाता है, परन्तु साहित्य में छोड़ दिया जाता है। क्योंकि ऐसी रचना गुणहीन, दोषपूर्ण, अलंकारहीन आंकी जाती है। युग युगान्तरों से चले आ रहे ऐसे शब्द न जाने किस रूप में काल-कवलित हो गये हैं। आज इनका इतिहास उपलब्ध नहीं है। अपभ्रंश का ही उदाहरण लीजिए जो आज से अढाई हजार वर्ष पूर्व अपना छुटपुट साहित्य लेकर चली और आजतक हमारे पास समृद्ध भाषा के रूप में पहुंच गयी। यह संस्कृत, पालि और प्राकृत से बढ़ चढ़ कर आयी परन्तु अपना शब्दकोश आज तक नहीं दे पायी। अपभ्रंश की वंश परम्परा में पहाड़ी भाषा हिमाचल प्रदेश के जनमानस की प्रिय है। पहाड़ी भाषा का रूप व्यापक है। शब्द श्री अनूठी है। शब्द सौन्दर्य मनोहारी है। शब्द शक्ति अतुलित है। शब्द महिमा अपरम्पार है। जब तक इसके आनन्द में ओत-प्रोत मन न हो तब तक जीवन में सूनापन लगता है। राजमार्ग एक है पर टेढ़े

मेढ़े, ऊंचे नीचे, चक्राकार, सर्पाकार, खरे खोटे, छोटे बड़े अनेक पन्थ हैं। एकही 'मार्ग' शब्द के पीछे विशेषण अच्छा या बुरा जोड़ने से न तो भावाभिव्यक्ति हो सकती है, ना ही शब्द शक्ति काम देती हैं। क्षेत्रीय अनुसंधान में शब्द श्रवण और प्रत्यक्ष दर्शन का लाभ इस प्रकार होता है :-

बत-बाट — छोटे मार्ग के लिए व्यवहृत है।
बीड़ — खेत का मार्ग-तनिक ऊंचा होकर विभाजन की रेखा दर्शाता है।
चनाट - पत्थरों का बना ऊंचा मार्ग।
चबाट - चार बाट, चतुष्पथ, चौक।
गलू— दो पहाड़ियों के बीच का मार्ग।
दुगलू— दोनों ओर का मार्ग।
टप्पा—जल प्रवाह में पैर धरने के लिए रखा पत्थर।
छाड़—नदी पार करने के लिए लगायी पत्थरों की पंक्ति।
गोह्‌र—घर जाने का मार्ग जिसके दोनों ओर कांटेदार झाड़ियां हों या पत्थरों की दीवार हो।
अटली-बीह्‌ — घर की देहली के पास बनाया आंगन से ऊंचा चलने फिरने और बैठने का स्थान।
पैंच्छड़-पैड़ — पशुओं का मार्ग, वन में पदचिह्न देखकर पशुओं की खोज की जाती है।
सह्‌न्न - चोर मार्ग, दीवार में गोलाकार प्रवेश।
कंढा — नदी तटवर्ती मार्ग।
कच्छ — पर्वत या खेत के साथ का मार्ग।

डूड्ड, बिल, भोर, गलाक्खा वृक्ष या भूमिगत मार्ग का व्यवहार प्राचीन परम्परा से चला आ रहा है, परन्तु आधुनिक परम्परा में गली, स्ट्रीट, रास्ता, रोड़, सड़क, पुल, लैंन, पटड़ी आदि न जाने कितने शब्द आ रहे हैं जो एक मार्ग शब्द का बोध करा रहे हैं। इसी प्रकार आटा गूंथने या मसलने से जो आग में सेकी पकायी जाय उसे रोटी कहने में वह आनन्द कहां आयेगा जो अनेक शब्द सुनने में आयेगा जैसे **संचोलू, ऐंकलू, चीऊ, पोलू, थोड़ी, भटूरू, बबरू, मिस्सी, बेहड़ी, ग्राखरी, प्राखड़ी, फुलका** आदि भांति-भांति के आकार प्रकार में हैं।

आज ऐसा शब्दकोश दुर्लभ है जिसमें इस प्रकार आचार विचार व्यवहार की शब्दमहिमा संग्रह रूप में मिल सके। हिमाचली-पहाड़ी शब्दकोश रचना की योजना चल रही है। पहाड़ी भाषा लोक साहित्य-कवित्त, गीत, कथा, गाथा आदि से समृद्ध है। जनवाणी में शब्दश्री का सौन्दर्य है। उच्चारण में मधुर, कोमल, कठिन, चपल, तरल, स्वर में आरोह-अवरोह आदि मानो सत्यं शिवं सुन्दरम का प्रतिभासन है।

शब्द चिन्तन और शब्द विश्लेषण की परम्परा चिरन्तन है। शब्दरसिक अनेक प्रसंग उद्धृत करता है। वह बतलाता है कि बालक के लिए मण्डी में मह्‌ठू, सिरमौर में माठू, शिमला के आस-

पास छोटू, छेडू और किन्नौर में छङ् अभिधान हैं। कोशकारों के साथ भाषाशास्त्रियों की भी रुचि रही है। शब्द संग्रह में भरतमुनि ने शब्दों में उकार बहुला प्रवृति का उल्लेख हिमालयवर्ती जनपद की भाषाओं में इस प्रकार किया है :—

हिमवत् सिन्धुसौवीरान् ये जनाः समुपाश्रिताः।
उकारबहुलां तज्जस्तेषु भाषा प्रयोजयेत् ॥

(नाटयशास्त्र, १७, ६२)

इस प्रकार शब्दचिन्तन होता चला आया है, परन्तु शब्दकोश की रचना अभी तक नहीं हो सकी है। पहाड़ी में व्यवहृत अनेक शब्द हमें बारहवीं शती के प्रतिष्ठित आचार्य हेमचन्द की देशी नाममाला में मिलते हैं। प्राकृत व्याकरण में पहाड़ी के साथ मिलता जुलता पद्य उन्होंने इस प्रकार दिया है :

जे महु दिण्णा दिऊहड़ा दइएं पवसंतेण।
ताण गणत्तिए अंगुलिउ जज्जरिआउ नहेण ॥ ८,४,३३३ ॥

आजकल की पहाड़ी में अक्षरशः हम सुन सकते हैं :

जे मिंजो दिन्नेया ध्याड़ा पतिएं चल्लेयो प्रवासिएं।
तिनां गिणदियें अंगुलियें जजरिआई नहां ने ॥

अर्थात् प्रिय ने प्रवासार्थ जाते हुए जितने दिन बताये थे, उन्हें गिनते-गिनते नख से मेरी अंगुलियां जीर्ण हो गयीं।

इस प्रकार पहाड़ी भाषा के शब्द संग्रह और विश्लेषण की प्रवृति हमें अपभ्रंश काल से मिलती है। आज तक न जाने कितनी नाममाला रची गयीं होंगी, पर प्रतीत होता है कि सब कालकवलित होती चली गयीं। बीसवीं सदी में जब भारती भाषा और साहित्य के प्रति विदेशी विद्वानों की रुची बढ़ी तो अनेक हस्त लिखित ग्रन्थों का संग्रह और सम्पादन किया गया। भारत भाषा सर्वेक्षण का विचार प्राच्यविद्या परिषद वीना, औस्ट्रिया में १८८६ ई० में हुआ। तदनुरूप सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने इस विशाल योजना को संभाला और सामग्री संकलन आरम्भ किया। १९०३ से १९२८ ई० पर्यन्त ग्यारह भागों और उन्नीस खण्डों में लगभग दस हजार पृष्ठों में भारत भाषा सर्वेक्षण का रूप सामने आया। भाषाओं के वर्गीकरण में ग्रियर्सन की जो भी धारणा रही हो वह भाषा शास्त्रियों के विवाद का विषय हो सकती है, परन्तु शब्द संग्रह और व्याकरण के रूप में पहाड़ी भाषाओं के प्रति जो प्रयत्न किया गया है वह एक प्रशंसनीय ही नहीं अपितु आजतक मार्गदर्शन कराता आ रहा है। सर्वेक्षण के नवें भाग के प्रथम खण्ड में कांगड़ी और भटियाली का शब्द दर्शन सुलभ है। इसी भाग के चौथे खण्ड में सभी पहाड़ी भाषाओं का वर्णन है। सर्वेक्षण के तीसरे भाग के प्रथम खण्ड में लाहुली, स्पिति, किन्नौरी, कनाशी आदि का उल्लेख है।

आज जो भी शोधकर्ता क्षेत्रीय अनुसंधान में प्रयत्नशील है वह ग्रियर्सन के सर्वेक्षण से प्रभावित रहता है। भले ही वह तनिक विरोधाभास प्रकट करे परन्तु ग्रियर्सन के महान् कार्य की प्रशंसा किये बिना कोई नहीं रह सकता। डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा ने ग्रियर्सन के 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ् इण्डिया-ए समरी" के प्रथम भाग की भूमिका में पहाड़ी शब्दों की ध्वनि और रूप रचना पर प्रकाश डाला है। पहाड़ी भाषा के शब्द संग्रह के संकलन में इस सदी के आरम्भ में अनेक विद्वानों और शब्द सूचकों का सहयोग निरन्तर रहा है।

१९११ में पण्डित टीका राम जोशी ने पहाड़ी भाषा और संस्कृति का अध्ययन किया। उन्होंने एच्.ए. रोज़ के सहयोग से "ए डिक्शनरी आफ् द पहाड़ी डायलैक्टस् एज् स्पोकन इन द पंजाब हिमालयाज्" का सम्पादन किया। इसका प्रकाशन जर्नल एण्ड प्रासिडिंग्ज आफ् द एशियाटिक सोसाइटी आफ् बंगाल (कलकत्ता) में न्यू सीरीज के सातवें भाग के पांचवें अंक में १५७ पृष्ठों में किया गया। इनमें शिमला की बोलियों के साथ कांगड़ी, मण्डियाली, कुलुई, चम्बयाली आदि बोलियों के रूप भी दिये गये हैं। तुलनात्मक दृष्टि में संस्कृत, हिन्दी तथा पंजाबी के शब्द भी उपलब्ध हैं। उदाहरण स्वरूप लोकोक्ति व्यवहार भी दर्शाया गया है। इस कोश का रूप रोमन लिपि में है। उच्चारण बोधक चिन्हों के प्रयोग से शब्दबोध सुगम है।

इसी प्रकार पण्डित टीका राम जोशी ने एच्. ए. रोज के सहयोग से "ए ग्रैमर एण्ड डिक्शनरी ऑफ् कनावरी" का प्रकाशन कलकत्ता में १९०९ में १९६ पृष्ठों में कराया है। इसी सहयोग में टी. ग्राहम बैली की "किन्नौरी वकैव्यूलरी इन् टू पार्टस-इंग्लिश-किन्नौरी एण्ड किन्नौरी-इंगिलश' का प्रकाशन रायल एशियाटिक सोसाइटी लन्दन द्वारा १९११ में हुआ है। इससे पूर्व १९०८ में ग्राहम बेली ने "लैंग्वेजिज् आफ् द नार्दर्न हिमालयाज्, बीइंग स्टडीज् इन द ग्रैमर आफ् ट्वैंटी सिक्स हिमालयन डायलैक्टस्" का प्रकाशन रायल एशियाटिक सोसाइटी लन्दन द्वारा सम्पन्न किया है।

पंजाब तथा पहाड़ी राज्यों के गजेटियर में परिशिष्ट के रूप में शब्द सूची मिलती है। पंजाब डिस्ट्रिक गजेटियर नवम भाग-ए, कांगड़ा डिस्ट्रिक १९०४ में परिशिष्ट में एडवर्ड ओ ब्रीन, तत्कालीन कांगड़ा जिलाधीश द्वारा संगृहीत तथा टी. ग्राहम बैली द्वारा सम्पादित शब्द सूची है : ग्लासरी आफ् वर्डज पिक्यूलियर टू द कांगड़ा डिस्ट्रिक एण्ड द नेबरिंग हिल ट्रैक्टस्। यह १३ पृष्ठ की सूची है। जे. विलसन द्वारा सम्पादित "शाहपुरी कांगड़ी ग्लासरी का पुर्नमुद्रण भाषा विभाग, पंजाब द्वारा पटियाला में १९६२ में किया गया है। कांगड़ी शब्द संग्रह का प्रकाशन, भाषा विभाग, पंजाब द्वारा पटियाला में अलग रूप में १९६६ में किया गया। इस प्रकार रिपोर्ट आफ् द लैण्ड रेवन्यू सैटलमैंट १८६५-७२ कांगड़ा तथा अन्य जिलों के वर्णन में शब्द सूची और लोकोक्ति संग्रह उपलब्ध है।

ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक पद्धति में पहाड़ी बोलियों का शब्द रूप दर्शन डॉ० रा० लि० टर्नर की कृति, "ए कंपैरिटिव डिक्शनरी आफ् द इण्डो-एरियन लैंग्वेजिज्" आक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस लन्दन द्वारा १९६६ में ८४१ पृष्ठों में प्रकाशित उपलब्ध है। श्रीमती दरथी रीवर्ज टर्नर ने इस कोश की वेस्टर्न पहाड़ी नामक सूची में पृष्ठ १६५ से १७३ तक पहाड़ी शब्द संकलन किया है। इसमें प्रमुख बोलियां हैं भटियाती, पंगवाली, क्योंथली, सिराजी, सिरमौरी, सुकेती, कांगड़ी आदि। अनुमानतः पांच हजार शब्दों का यह संग्रह है।

टर्नर दम्पती ने एक अन्य भाग प्रकाशित किया है जिसमें शब्दों का उच्चारण रूप है—ए कम्पैरिटिव डिक्शनरी आफ् द इण्डो-एरियन लैंग्वेजिज्फोनेतिक अनैलसिस्। आक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस लन्दन द्वारा यह ग्रन्थ १९७१ में प्रकाशित हुआ है।

सर्वप्रथम पहाड़ी शब्द संग्रह की सरणी में टर्नर दम्पती ने नेपाली शब्दकोश की रचना की। ए कम्पैरिटिव एण्ड एटिमालाजिकल डिक्शनरी आफ् द नेपाली लैंग्वेज का प्रकाशन १९३१ में लन्दन में हुआ। इसमें पृ० ७५२ से ७५६ तक वेस्ट पहाड़ी नामक शब्द संग्रह है। टर्नर दम्पती का शब्द संग्रह निरन्तर बढ़ता रहा। अप्रकाशित शब्द संग्रह का न्यास ओरियण्टल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज स्कूल, लन्दन के पुस्तकालय में सन्दर्भ हेतु प्रस्तुत है।

डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी ने अपने शोध प्रबन्ध 'द आरिजन एण्ड डिवैलपमैंट आफ द बंगाली लैंग्वेज, १९२६ में कलकता में प्रकाशित ग्रन्थ में पहाड़ी शब्दों का समावेश ऐतिहासिक और तुलनात्मक पद्धति में किया है।

पहाड़ी बोलियों के शब्द संग्रह में डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा ने उच्चारणानुरूप शब्द प्रस्तुत कर एक नयी दिशा प्रदान की है। पश्चिमोत्तरी हिमालय की २७ बोलियों का तुलनात्मक कोश आधी सदी बीतने पर भी प्रकाश में नहीं आ पाया। आगरा विश्वविद्यालय के हिन्दी पीठ की शोध पत्रिका 'भारतीय साहित्य' में डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा ने डोगरी कांगड़ी, पालमपुरी, सुजानपुरी बोलियों के शब्दों का अध्ययन ध्वन्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। हिमाचल कला-संस्कृति और भाषा अकादमी, शिमला से प्रकाशित सोमसी और हिमभारती पत्रिकाओं में डॉ० वर्मा के लेखों में पहाड़ी भाषा के शब्दों का अध्ययन ऐतिहासिक और तुलनात्मक दृष्टि कोण से महत्वपूर्ण है।

१८९५ में लाहौर में प्रकाशित भाई माया सिंह की पंजाबी डिक्शनरी में पहाड़ी शब्दों का समावेश है। पंजाबी के महान् शब्द कोशकार काहनसिंह के गुरुशब्द रत्नाकार, १९३० में दरबार पटियाला में प्रकाशित कोश में पहाड़ी शब्द उपलब्ध हैं।

जम्मू कश्मीर ललित कला, संस्कृति तथा साहित्य अकादमी द्वारा १९७४ में प्रकाशित डोगरी हिन्दी शब्दकोश में श्री हंसराज पंदोत्रा तथा श्री श्याम लाल शर्मा ने कांगड़ी तथा चम्बयाली शब्दों

का निरुपण किया है। इसी प्रकार प्रा० राम नाथ शास्त्री तथा सहयोगियों द्वारा १९७९ से प्रकाशित की जा रही डोगरी डिक्शनरी में कांगड़ी, सिराजी आदि बोलियों के शब्द सुलभ हैं।

हिमाचल प्रदेश की बोलियों के शब्दों को तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय राज्य भाषा संस्थान, हिमाचल प्रदेश को १९७० में प्रकाशित हिन्दी-हिमाचली (पहाड़ी) अनन्तिम शब्दावली के लिए है। इसमें हिन्दी के २००० आधारभूत शब्दों के साथ हिमाचल में प्रचलित विभिन्न शब्द सात बोलियों में आमने सामने दिये हैं। इनके शीर्षक हैं :—

सिरमौर, महासू, कुल्लू, मण्डी, बिलासपुर, कांगडा, चम्बा।

हिमाचल भाषा एवं संस्कृति विभाग द्वारा हिमाचली-हिन्दी कोश प्रकाशनाधीन हैं। इस दिशा में जो भी प्रयास हो रहा है उसके प्रकाशन की उत्सुकता बनी हुई है। हिमाचली भाषा में शब्द भण्डार इतना विशाल है कि अभी तक सर्वत्र संग्रह के लिए सम्पर्कसूत्र पूर्ण नहीं हो सका है। हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी ने एक दशक में प्रयत्नशील होकर लगभग एक लाख शब्दों का संग्रह कर लिया है जिसका सूची करण तथा वर्गीकरण सम्पन्न हो रहा है। इसका प्रारूप हिमभारती के अंकों में प्रकाशित है।

यदि हम शब्दकोश के इतिहास का अवलोकन करें तो हमें विदित होगा कि शब्द संग्रह एक या दो वर्ष का कार्य नहीं अपितु अनेक वर्षों या समस्त जीवन की साधना का परिणाम है। आज से अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व यास्कमुनि की अमरकृति निघण्टु उपलब्ध है। इससे पूर्व भी निघण्टु या अन्य कोश विद्यमान थे जो उत्तरोत्तर विकास रचना में लुप्त हो गये। निघण्टु में पर्यायवाची या समानार्थ बोधक शब्द हैं जैसे अग्नि के नाम, जल के नाम आदि। समानार्थक शब्दों की जिज्ञासा प्रायः सभी को रहती है। आज भी हम जब किसी घुमक्कड़ से मिलते हैं तो उससे खान पान परिधान के समानार्थक शब्द देशज विदेशज आदि सुनने की उत्कण्ठा प्रकट करते हैं। हिमाचल प्रदेश का पर्यटक तुरन्त बतलायेगा कि जल के लिए कहां पाणी, पाणे, पानी और चीश बोला जाता है और कहां-कहां प्यास लगने पर क्या क्या उच्चारण करना पड़ता है। सिरमौर से शिमला के दूर छोर तक **चीश**, कुल्लू में **शोख**, मण्डी में **सोख**, बिलासपुर में **ध्या**, कांगड़ा में **ध्रे ध्या** और चम्बा में **त्रेह, तिरिश** आदि बोला जाता है। इस प्रकार एक शब्द के कितने पर्याय हैं और ये कहां कहां बोले जाते हैं – यह निघण्टु की शब्द ज्ञान शैली आजतक पूर्व पुरुषों से लेकर निरन्तर चली आ रही है: अनेक सामानार्थक शब्द लिपि बद्ध न होने पर भी मौखिक परम्परा में यत्र तत्र व्यवहृत हैं। संस्कृत में परिवर्धित शैली श्लोकबद्ध हुई जिसमें अमरकोश आदि अनेक एकार्थ तथा नानार्थ कोश हैं। आचार्य हेमचन्द की "देशीनाममाला" में रुणझुण, टणटण, ओटी आदि शब्द देशी शब्दकोश के सूत्र पात के रूप में हैं। विकसित रूप में आज यही क्रम-तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज के रूप में सुलभ है।

मौखिक परम्परा में आज भी शब्दभण्डार विशाल है। लोहार, कहार, सोनार, तेली, माली, ढोली,

घराटी आदि के पास अपने तकनीकी और व्यावहारिक शब्दों की सूची है। वैद्य के पास जड़ी बूटियों के अनेक नामों की सूची हैं। विवाह आदि उत्सव में वर्तन व्यवहार में एक ऐसी शब्दसूची संजोयी जाती है जिसे औड़ी कहते हैं। इसमें खानपान वस्त्र, आभूषण, नाप तोल, मुद्रा आदि का वर्तन व्यवहार मिलता है। बही खाते में वाणिज्य व्यवहार के अनेक शब्द हैं। इस प्रकार यदि व्यापक दृष्टि अपनायी जाय और सब खण्डों से जानकारी प्राप्त की जाय तो शब्द समूह इतना बड़ा हो जाय कि एक एक शब्द की अर्थछाया के दर्शन कठिन हो जांये। इन शब्दों को लिपिबद्ध करना श्रमसाध्य तथा व्ययसाध्य तो है ही परन्तु धैर्य तथा समयसाध्य भी है। इसका उदाहरण हमारे सम्मुख है आक्सफर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के सम्पादन में भाषा साहित्य और कला के विद्वान एकत्रित हुए। १८५७ से लेकर १९२८ तक ७२ वर्षों में १३ खण्डों में इसका प्रकाशन हुआ। तेरहवें खण्ड में अतिरिक्त शब्दों के साथ ९१ पृष्ठों की ग्रन्थ सूची है जो उद्धरणों में सहायक सिद्ध हुई है। शब्द श्री की निरन्तर वृद्धि के कारण १९७२ से १९८६ तक पन्द्रह वर्षों में आर. डवल्यू. वर्चफील्ड तथा सहयोगियों द्वारा "ए सप्लिमैंट टू द आक्सफर्ड इंग्लिश डिक्शनरी" का प्रकाशन चारभागों में हुआ। लगभग पांच दशक पूर्व काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा "हिन्दी शब्द सागर" के लिए एक लाख रुपये की योजना बनी। अनेक सम्पादन समितियां बनीं। २०२२ वि० से २०३२ वि० तक ग्यारह वर्षों में ग्यारह भागों में यह महान कोश बन पाया। संस्कृत का विशाल शब्दकोश 'एन् इन्साइकलोपीडिक डिक्शनरी आफ् संस्कृत आन् हिस्टारिकल प्रिंसिपल्ज" का समारम्भ १९४९ में हुआ। १९७६ में प्रथम भाग का प्रकाशन हुआ और १९८२ में तीसरा भाग प्रकाशित हुआ। अभी तक अधि-शब्द प्रकाशित हुआ है। इस गति में इस कोश के पूर्ण होने में न जाने कितने वर्ष लगेंगे। इस कोश में संस्कृत के शब्दों के अंग्रेजी में विविध अर्थ ऐतिहासिक परम्परा में हैं। इस विधि द्वारा भारत की नहीं अपितु संसार की अन्य भाषाओं के ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन में यह विश्वकोश का रूप धारण करेगा - ऐसी आशा है।

यदि इस प्रकार हम हिमाचली पहाड़ी शब्दकोश की कल्पना करें और प्रदेश में बहुविध साधन जुटा लें तो भी यह कोश एक दो नहीं अपितु अनेक वर्षो में सम्पादित और प्रकाशित होगा। कोश से इतना अभिप्राय नहीं होना चाहिए कि इने गिने शब्द जोड़ कर अर्थ छाया दर्शा कर काम चला लिया जाय। इसका अभिप्राय तो ऐसा शब्द संग्रह है जो लिखित साहित्य से तो मिलेगा ही परन्तु लोकसाहित्य तथा लोक व्यवहार से भी अधिकाधिक रूप में मिलता जाएगा। इन्हीं शब्दों के आधार पर हमारी संस्कृति और सभ्यता का इतिहास निर्भर है। यदि हम प्राचीन इतिहास वैदिक, महाभारत अथवा रामायण कालीन खोजना चाहें तो हमें बहुविध अनुमान लगाना पड़ेगा। आज जो वैदिक कालीन, महाभारत कालीन, रामायण कालीन, पाणिनिकालीन अथवा गुप्तकालीन भारत का इतिहास हमारे पास है वह इन अमरकृतियों में दिये गये अमर शब्दों का ही परिणाम है जिनका अध्ययन कर विद्वानों ने भाषा, संस्कृति, समाज और इतिहास के अध्ययन की परम्परा जोड़ी है।

आज यदि हम अपने प्रदेश के प्राचीन और अर्वाचीन लिखित या मौखिक साहित्य का विवेचन और विश्लेषण करें तो हमें इतना शब्द भण्डार इतस्ततः बिखरा मिलेगा जिसे इकट्ठा करने के लिए पूर्ण दल बल की आवश्यकता के साथ अनेक साधन जुटाने पड़ेंगे। हिमाचल प्रदेश में गत दशक में जो शब्द साधना हुई है यदि उसी के आधार पर हिमाचली पहाड़ी शब्द कोश का श्रीगणेश किया जाय तो विशाल शब्द कोश का दर्शन प्रारम्भ हो जाय। हिमाचल प्रदेश में बोली वैविध्य अवश्य है पर व्यावहारिक पक्ष में यह वैविध्य कम होता जाता है। इसमें प्रमुख हैं आज के सम्पर्क साधन जिनके द्वारा दूर छोर में बसने वाले भी एक दूसरे के निकट होते चले आ रहे हैं। जहां वे अपनी विविध शैली में अर्थव्यापार कुशलता से कर रहे हैं, वहां शब्द व्यापार भी सहर्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। शब्द संग्रह की दिशा में यदि हम दृष्टिपात करें तो हमें प्रतीत होगा कि हिमाचली शब्द कोश के लिए कितना शब्द भण्डार हमारे पास है। मेरे पास उपलब्ध सामग्री के अनुसार इस दिशा में प्रगति इस प्रकार है :—

सर्वप्रथम पण्डित टीका राम जोशी, सरजार्ज अब्राहम ग्रियर्सन, ग्राहम बेली, टर्नर आदि विद्वानों की देन का उल्लेख किया जा चुका है। इस दिशा में जो अन्य शब्द संग्रह हुआ है उसका परिचय दिया जा रहा है।

१, किन्नौरी शब्द संग्रह

अकादमी की पत्रिका हिमभारती में हिन्दी-किन्नौरी शब्द संग्रह का शुभारम्भ हिमाचली शब्दकोश रचना में एक उत्तम प्रयास है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की कृति "किन्नर देश" किताब महल इलाहाबाद में १९५७ में प्रकाशित द्वारा किन्नौरी के सांस्कृतक शब्दों का दर्शन मिलता है।

डॉ० न० रामसुब्रह्मण्यम् का अप्रकाशित शोध प्रबन्ध "ए डिस्क्रिप्टिव स्टडी आफ किन्नौरी" (१९६७) में किन्नौरी ध्वनिरूप वर्णन है।

श्री ठाकुरसेन नेगी द्वारा सोमसी (अक्तूबर १९७५) में तथा अन्य शोधपत्रों में किन्नौरी बोली का रोचक शब्द संग्रह है।

डॉ० बंशी राम शर्मा ने "किन्नर लोक साहित्य" शोध प्रबन्ध (ललित प्रकाशन, लैहड़ी सरेल १९७६) के ग्यारहवें अध्याय के पृष्ट ३३६ से लेकर ३९७ तक किन्नर क्षेत्र की नौ बोलियों के शब्दों का परिचय दिया है, यथा—

१. कनौरयानुस्कद, २. छितकुली, ३, हरिजन बोली, ४. औरस बोली, ५. न्यमस्कद, ६. सुङ्नम बोली, ७. थेबरस्कद, ८. जंगी, लिप्पा, असरङ् बोली तथा ९. नमगिया बोली।

इस शोध प्रबन्ध की अनुक्रमणिका में विशिष्ट शब्द सूची है।

डॉ० देवीदत्त शर्मा की कृति "डिस्क्रिप्टिव ग्रैमर आफ किन्नौरी (मित्तल प्रकाशन, दिल्ली १९८८) में ध्वनि, रूप वाक्य रचना पर विशेष प्रकाश डाला गया है।

२. लाहुल-स्पिति शब्द संग्रह

श्री के. अंगरूप लाहुली ने लाहुल की किराती-कणाशी बोलियों पर सोमसी (१, ४ अक्तूबर १९७५) में तथा अन्य शोधपत्रों में प्रकाश डाला है। इनकी कृति संभोट व्याकरण इस दिशा में उत्तम प्रयास है।

डॉ० सुहणू राम ने अप्रकाशित शोध प्रवन्ध "फोनालजिकल स्ट्रक्चर आफ् स्पिति (१९७६) में स्पिति के शब्द और उनकी ध्वनि का निरूपण किया है।

श्री छेरिंग डुगे ठाकुर ने लाहुल स्पिति बोलियों के संस्कृति सम्बन्धी शब्द का संग्रह किया है। हिमभारती में प्रकाशित हिन्दी-किन्नौरी शब्द श्री में श्री बीरेन्द कुमार तथा अन्य विद्वानों का प्रयास सराहनीय है।

श्री शेर सिंह शर्मा ने पट्टनी बोली के शब्दों का संग्रह किया है। डॉ० देवी दत्त शर्मा ने इस क्षेत्र की बोलियों के शब्दों की ध्वनि और रूप रचना पर प्रकाश डाला है। इस दिशा में इनकी पुस्तक "ए डिस्क्रिप्टिव अनैलिसिस आफ् पट्टनी" उपयोगी है। कुमारी श्यामा ठाकुर ने चिनाली शब्द संग्रह किया है। श्री बलराम ने "लाहुल की बोलियां (सोमसी ४, ३ जुलाई १९७८) में हिन्दी पट्टनी, कणाशी, किन्नौरी, गारी और तोपा बोलियों के शब्दों का परिचय दिया है।

३. कुलुई शब्द संग्रह

देव भूमि कुल्लू में वाग्देवी की उपासना महर्षि वसिष्ठ, जमदग्नि और मनु से लेकर होती चली आ रही है। प्राचीन संस्कृति और सभ्यता का प्रमाण यदि दिया जाय तो कुल्लू में प्रचलित शब्दावली के आधार पर उसकी पुष्टि की जाती है। प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के अनुसन्धित्सुओं के लिए यह क्षेत्र विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा है। इस दिशा में शब्द संग्रह के जो प्रयास हुए हैं उनका दिग्दर्शन इस प्रकार है :-

आज से ११८ वर्ष पूर्व १८७१ में रेव० डवल्यू० जे पी० मारिसन ने कुलुई वकैब्यूलरी नामक शब्दसंग्रह किया जो प्रकाशित नहीं हुआ। ए. ए.च् डायक ने "कुलुई डायलक्ट आफ् हिन्दी-सम नोटस आन ग्रैमेटिकल स्ट्रक्चर विद स्पेसिमन आफ् द सांगज करंट अमंग द पीपल एण्ड ए ग्लासरी नामक पुस्तक का प्रकाशन लाहौर में १८९६ में किया। एतदनन्तर कुलुई संस्कृति सभ्यता, इतिहास विषयक ग्रन्थों में कुलुई शब्द सम्पत्ति पर प्रकाश डाला है। गत दशक में शब्द संग्रह की दिशा में पुरोहित चन्द्रशेखर बेवस ने कुलुई भाषा सर्वेक्षण कार्य में अपना विशेष योगदान दिया है। हिमभारती (४, १, मार्च १९७२) में कृषि सम्बन्धी शब्दावली तथा (अं० ३५, १९७७ में) कुलुई लोकोक्तियां और मुहावरे संगृहीत किये हैं। पुरोहित जी ने सोमसी, सप्तसिन्धु तथा अन्य

पत्रिकाओं में अपने शोधपूर्ण लेख प्रकाशित कर कुलुई शब्द सम्पति की ओर मन आकर्षित किया है।

श्री हरिचन्द अत्रि ने "कुलवी लोकभाषा" (हिम भारती ४, २ जून १९७२) में तत्सम, तद्भव तथा विकारी शब्दों की सूची दी है।

श्री लीलाधर पाराशर ने "हिन्दी-कुलुई तुलनात्मक वाक्यावली" (सोमसी अंक १९, जुलाई १९७९) में तुलनात्मक शब्द तथा वाक्य बोध कराया है। कुलुई लोकोक्तियों में सुन्दर शब्द चित्रण मिलता है जिसका वर्णन कु० विद्या शर्मा के लेख "कुल्लू जनपद में लोकोक्तियों का प्रयोग" (सोमसी, अक्तूबर १९७७) तथा इसी अंक में श्री बाल कृष्ण के लेख "कुलुई लोकोक्तियां" में सुलभ है। श्री सुखराम ठाकुर ने हिमभारती (मार्च १९७५) में प्रकाशित लेख "मलाणी तां तिन्हारी बोली—कणाशी" में शब्द परिचय कराया है।

डॉ० नरेन्द्रनाथ शर्मा ने 'सिराजी में संस्कृत ध्वनि तत्व' शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर ऐतिहासिक परम्परा में शब्द बोध कराया है। डॉ० पद्मचन्द कश्यप के शोध प्रबन्ध 'कुल्लुई लोक साहित्य' (नेशनल प्रकाशन, दिल्ली) में कुलुई के रोचक शब्द मिलते हैं।

श्री लाल चन्द प्रार्थी ने अपनी कृति 'कुलूत देश की कहानी' (नील कमल प्रकाशन, कुल्लू) के परिशिष्ट में मूल संस्कृत शब्दों से सम्बन्धित कुलुई शब्द सूची दस पृष्ठों में दी है। इनके अन्य शब्द संग्रह की पाण्डुलिपि हिमाचल अकादमी में प्रकाशन के लिए विचाराधीन है।

श्री मौलू राम ठाकुर ने "पहाड़ी भाषा-कुलुई के विशेष सन्दर्भ में" (सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, १९७५) में कुलुई बोलियों- बाह्य सिराजी और भीतरी सिराजी पर विशेष प्रकाश डाला है। इस ग्रन्थ का दूसरा अध्याय 'कुलुई की शब्द सम्पत्ति-ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि में महत्वपूर्ण है। इस अध्याय में संस्कृत, प्राकृतिक, देशी, फारसी, अरबी, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं से कुलुई शब्द संग्रह की दिशा में उत्तम प्रयास किया गया है। कुलुई शब्द परम्परा को १. तत्सम, २. तद्भव, ३. देशी, ४. विदेशी ५ अनार्य भाषाओं के शब्द तथा ६. आधुनिक भारतीय भाषाओं से उधार लिये शब्द प्रकरण में प्रस्तुत कर अद्भुत संमिश्रण की झांकी प्रस्तुत की है। हिमभारती, सोमसी, सप्तसिन्धु, जनसाहित्य आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित श्री ठाकुर के लेख वर्तनी, संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया आदि विविध शब्द संकलन में मूलभूत सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

४. सिरमौरी-शब्द संग्रह :

सिरमौर क्षेत्र के शब्द संग्रह में अनेक विद्वानों ने प्रयत्न किया है। श्री राम दयाल नीरज ने हिमप्रस्थ, सोमसी, हिमभारती तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं में विविध शब्द प्रस्तुत किये हैं। इनके लेख "सिरमौर क्षेत्र की लोकोक्तियां" (सोमसी, अक्तूबर, १९७७) में सिरमौरी के ठेठ शब्दों का परिचय मिलता है। शोध पत्रावली (१९७०) में "सिरमौरी तथा उसके सर्वनाम और अव्यय" नामक लेख प्रस्तुत हैं।

पहाड़ी मृणाल चन्द्रमणि वशिष्ठ ने अपनी कविताओं में सिरमौरी के शब्द माधुर्य का परिचय दिया है तथा रेणुका क्षेत्र से सम्बन्धित शब्दावली का बोध कराया है। श्री अमर सिंह चौहान ने "सिरमौरी हिन्दी-शब्दावली" (हिमभारती ६, ४, दिसम्बर १९७४) में उत्तम प्रयास किया है। श्री विद्यानन्द सरैक ने सिरमौरी शब्दावली का संग्रह किया है। डॉ० खुशी राम गौतम ने 'सिरमौरी लोक साहित्य' शोध प्रबन्ध में सिरमौरी शब्द दर्शन विविध प्रसंगों में कराया है।

शिमला-महासुई शब्द संग्रह

डॉ० हरिराम जसटा ने महासुई शब्द सम्पत्ति का दर्शन अपने ग्रन्थों तथा लेखों में कराया है। 'ठेठ पहाड़ी के ठाठ' (सोमसी २,२, अप्रैल १९७६) में पहाड़ी शब्दों की अर्थ छाया पर विशेष प्रकाश डाला है। एकार्थक तथा अनेकार्थक शब्दों के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। हिमाचल में भाषा साहित्य एवं कला के पच्चीस वर्ष" (हिमभारती, दिसम्बर, १९७३) में शब्द योजना पर विचार है। 'महासुई की शब्द सम्पदा' (सोमसी, अक्तूबर१९७५), 'शिमला क्षेत्र की लोकोक्तियां' (सोमसी, अक्तूबर, १९७७), 'महासू की बोली में सर्वनाम और अव्यय शब्द' (शोध पत्रावली भा० १,१९७०, पृ० ७०-८०) तथा अन्य लेखों में शब्द संग्रह की दिशा में प्रशस्य प्रयास किया गया है।

श्री रामानन्द ने 'महासुई उपभाषा के कतिपय पारिवारिक शब्दों का संस्कृत से सम्बन्ध' (सोमसी २, ४, अक्तूबर १९७६) में ऐतिहासिक दृष्टिकोण अपनाया है।

श्री नरेन्द्र सिंह अरुण ने "सोलन क्षेत्र की पहेलियां" (सोमसी, अक्तूबर १९७७), 'रंग-बरंगे फुल्ल' आदि कविता, नाटक, वर्णनात्मक निबन्धों में शिमला, चम्बा, विशेषतः कुनिहार में प्रचलित शब्दों का परिचय दिया है। श्री सी.आर.बी. ललित ने अपनी रचनाओं में समाज में रूढ़िवाद के शब्दों का दर्शन कराया है। श्री जयदेव किरण ने पात्थरो रे माह्णू' (१९७४) तथा 'पीड़ पहाड़ां री' (१९८५) कविता संग्रह में हिन्दी शब्द छाया दी है।

श्री भीम दत्त काले ने बघाटी क्योंथली शब्द संग्रह सोमसी, हिमभारती तथा अन्य पत्रिकाओं में ऐतिहासिक और तुलनात्मक पद्धति में निरुपित किया है। 'लोअर महासुई भाषा ध्वनि तत्व (हिमभारती, जून-सितम्बर, १९७५) में इन्होंने महासुई ध्वनियों पर प्रकाश डाला है।

डॉ० मनोहर शर्मा ने क्योंथली बोली पर अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया है। डॉ० ईश्वरी दत्त ने अपने शोध प्रबन्ध 'बघाटी बोली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन, (१९७१) में बघाटी के विविध शब्द संग्रह की योजना अपनायी है। इनका लेख 'बघाटी के धातु शब्द' (सोमसी १९७६) उपादेय है।

सुश्री उमा शर्मा ने 'क्योंथल जनपद की लोकोक्तियां' (सोमसी अक्तूबर १९७७) में भावपूर्ण शब्दों का परिचय दिया है। इसी प्रकार श्री जगदीश शर्मा, श्री तुलसी रमण, श्रीनिवास श्री

कान्त, श्री ठाकुर दत्त आलोक, श्री रोशन लाल चौहान तथा अन्य विद्वानों ने शिमला तथा सोलन की बोलियों के शब्द तत्व का दर्शन अपनी विविध रचनाओं में कराया है।

डॉ० हंस हैण्ड्रिकसेन ने "हिमाचली स्टडीज" (कोपेनहेगन १९७६) में कोटगढ़ में व्यवहृत शब्दों का संग्रह तथा सुन्दर विश्लेषण किया है। हिमाचली शब्दों का सम्बन्ध वैदिक भाषा से स्थापित किया गया है। डॉ० रा० लि० टर्नर ने बुलेटिन ऑफ् द स्कूल ऑफ ओरियण्टल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज, भा० ४२, खं० २, १९७९ पृ० ३५८-६० में उक्त ग्रन्थ की समीक्षा करते हुए लिखा है कि ग्रन्थ में दर्शित "थाच" शब्द का सम्बन्ध ऋग्वेद में "स्थात्रम्" से है यथा—भूरि स्थात्रम'। पालि, प्राकृत तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं में इसका प्रयोग नहीं मिलता है। शब्द संग्रह में अंग्रेजी अर्थ इस प्रकार दिखाया है :

थाच – समर स्टेशन आन ए हिल फार ग्रेजिंग शीप एण्ड गोटस। श्री मौलूराम ठाकुर ने कुलुई (पृ० १४२) में इसका अर्थ 'भेडों के लिए पहाड़ों पर चरागाह' किया है। इसके साथ थौची शब्द का अर्थ 'गौ का स्थान है'।

६ मण्डियाली शब्दसंग्रह

डॉ० कांशी राम आत्रेय पठानिया ने अनेक क्षेत्रों में अनुसंधान कर मण्डियाली लोक साहित्य पर शोध प्रबन्ध, हिमाचली लोक साहित्य मंजूषा (शान्ति प्रकाशन, टिहरा, मण्डी, १९८१), कृषि परक मण्डियाली शब्दावली, (सोमसी, अक्तूबर १९७५) तथा अन्य विविध पत्रिकाओं में प्रकाशित कर शब्दसंग्रह के लिए प्रचुर सामग्री प्रदान की है।

डॉ० नीलमणि उपाध्याय ने हिमभारती, सोमसी तथा अन्य पत्रिकाओं में प्रकाशित शोधपत्रों में मण्डियाली के सांस्कृतिक शब्दों का उत्तम विवेचन किया है। डॉ० जगतपाल शर्मा ने मण्डियाली भाषा पर शोध प्रबन्ध तथा कहलूरी शब्दसंग्रह प्रस्तुत किया है। डॉ० मुरारी लाल शर्मा ने 'मण्डियाली बोली का भाषा शास्त्रीय अध्ययन नामक शोध प्रबन्ध में अनेक शब्दों पर विवेचन किया है।

श्री भवानीदत्त शास्त्री ने 'लेरां धारां री' कविता संग्रह, हिमभारती, सोमसी तथा अन्य पत्रिकाओं में प्रकाशित अपनी लेखमाला में हिमाचली भाषा विशेषतः मण्डियाली शब्दों की परम्परा संस्कृत से स्थापित करने का श्रेय अर्जित किया है। श्री दीनानाथ शास्त्री तथा श्री हेमकान्त कात्यायन ने 'मण्डी समाचार' में पहाड़ी शब्द समन्वय प्रस्तुत किया है।

७. बिलासपुरी-कहलूरी शब्दसंग्रह

डॉ० लेखराम शर्मा ने हिमभारती तथा सोमसी पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों में कहलूरी का-शब्द संग्रह ऐतिहासिक और तुलनात्मक पद्धति में प्रस्तुत किया है। बिलासपुरी शब्दों का अध्ययन पौराणिक विचारधारा में प्रस्तुत कर एक नयी दिशा अपनायी है।

श्री शुकदेव शर्मा ने 'कहलूरी भाषाओं में संस्कृत शब्द' (सोमसी, अक्तूबर १६७५) में ऐतिहासिक परम्परा का दर्शन कराया है। डॉ० श्रीराम शर्मा के प्रकाशित लेखों में बिलासपुरी शब्दों का परिचय मिलता है। कु० अनीता ने 'बिलासपुरी बोली के व्याकरण का अध्ययन (घुमारवीं १६८२) में उच्चारणानुरूप शब्द देने का यत्न किया है।

श्री मनसाराम शर्मा अरुण ने "कहलूरी भाषा के कतिपय शब्द —अर्थ विवेचन' (सोमसी, जुलाई १६७६) तथा अन्य शोध पत्रों में कहलूरी शब्दों की सांस्कृत निष्ठ परम्परा को दर्शाया है।

श्री आनन्द बिहारी लाल शर्मा ने श्री नयना देवी के आस-पास व्यवहृत शब्दों का उत्तम संकलन किया है।

डॉ० बंशी राम शर्मा ने बिलासपुर क्षेत्र में प्रचलित शब्द तथा लोकोक्तियों का तुलनात्मक दृष्टिकोण से संग्रह किया है जिसका दर्शन सोमसी, हिमभारती तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं में सुलभ है।

८. चम्बयाली शब्दसंग्रह

श्री हरिप्रसाद सुमन ने चम्बयाली शब्दों का उत्तम संग्रह किया है जिसका प्रकाशन हिमभारती तथा सोमसी के विभिन्न अंकों में उपलब्ध है। 'चम्बयाली की विशिष्ट शब्दावली में भाषातत्व (हिमभारती जून-सितम्बर १६७५) में गहन विचार प्रस्तुत है।

श्री खेमराज गुप्त ने कविता संग्रह तथा विविध लेखों में चम्बयाली शब्द माधुर्य प्रकट किया है। डॉ० विद्या चन्द ठाकुर ने सामाजिक तथा सांस्कृतिक शब्दावली का निरुपण अपनी विविध रचनाओं में किया है। श्री हरिश्चन्द्र शास्त्री ने अपने ऐतिहासिक तथा सामाजिक लेखों में चम्बयाली शब्द सम्पत्ति का बोध कराया है।

डॉ० दर्शन कुमार त्रिपाठी का शोध प्रबन्ध 'कण्डियाली बोली का वर्णनात्मक अध्ययन' (१६७६) हिमाचल की सीमावर्ती बोली के शब्दों के अध्ययन की दिशा में महत्वपूर्ण है। चम्बयाली और नूरपुरी के शब्दों का सम्मिश्रण कण्डियाली में उपलब्ध है।

६. गादी-शब्दसंग्रह

श्री अमर सिंह रणपतिया की 'गादी हिन्दी प्रयोगात्मक शब्दावली' (शिमला १६८२) में गादी बोली के शब्द तथा लोकोक्तियों का सुन्दर सम्पादन है। भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक के १६१ पृष्ठों में शब्द तथा प्रयोग दर्शन मिलता है।

डॉ० सुशील कुमार फुल्ल ने अपनी प्रकाशित रचनाओं में गादी बोली के शब्दों का परिचय दिया है। 'गादी बोली सामान्य परिचय (हिमभारती, जून-सितम्बर १६७५) तथा अन्य लेखों में सांस्कृतिक शब्द परिचय उपलब्ध है।

१०. कांगड़ी शब्दसंग्रह

हिमाचल प्रदेश में कांगड़ी का क्षेत्र बिस्तृत है। १ नवम्बर १९६६ से पूर्व कांगड़ा ज़िला में कुल्लू, हमीरपुर तथा ऊना का कुछ भाग सम्मिलित था। अब कांगड़ी के तीन जिले बन गये हैं। कांगड़ी, हमीरपुरी तथा ऊनवी नामकरण पर बल दिया जा रहा है। प्रस्तुत सन्दर्भ में सबके लिये अभी कांगड़ी का ही व्यवहार है।

श्री रघुनन्दन शास्त्री ने कांगड़ी शब्दसंग्रह तथा कांगड़ी का भाषा शास्त्रीय अध्ययन विषयक शोध स्वतन्त्रता पूर्वक लाहौर में किया था जो भारत विभाजन के पश्चात् लाहौर में ही स्मृतिशेष रह गया। इन्होंने सांस्कृतिक शब्दों का रूप दर्शन अपनी पुस्तकों तथा शोधपत्रों में करवाया है।

श्री हरिचन्द पराशर ने कांगड़ी शब्दसंग्रह में प्रकाशन सहयोग भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला को देकर हिमाचली कोश सम्पादन के लिए उत्साहवर्धन किया है। हिमप्रस्थ, हिमभारती, सोमसी, विश्वज्योति आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित इनके लेखों में एक तड़प शब्द योजना के लिए पायी गयी है।

डॉ० गौतम शर्मा व्यथित ने अपने शोध प्रबन्ध कांगड़ी लोकविधा में जीवन दर्शन के साथ शब्द दर्शन भी कराया है। विशेषतः पालमपुर और कांगड़ा तहसील के व्यावहारिक शब्दों का संग्रह इन्होंने किया है।

हिमभारती (मार्च १९७४, सितम्बर, १९७४) में पालमपुर क्षेत्र – रसोई भोजनालय सम्बन्धी व्यावसायिक शब्द' तथा अन्य शब्दसंग्रह का प्रयास हिमाचली शब्दकोश सम्पादन की दिशा में सराहनीय योगदान है। कांगड़ा लोक साहित्य परिषद् नेरटी के लेखक वर्ग में श्री शेष अवस्थी, श्री प्रेम भारद्वाज, डा० दौलत राम गर्ग, श्री रमेश चन्द मस्ताना, श्री हरिकृष्ण मुरारी, श्री भगत राम मुसाफिर आदि ने अपनी कृतियों में हिमाचली शब्द महिमा को संजोया है।

डॉ० शमी शर्मा ने अपनी पुस्तकों तथा लेखों में सांस्कृतिक शब्दों का संकलन तथा व्याकरणिक कोटियों का वर्णन किया है। "कांगड़िया दे पुराने गद्य लिखयो रूप" (हिमभारती, दिसम्बर १९७१) में कांगड़ी की प्राचीन शब्द परम्परा पर प्रकाश डाला है। पोथी घर प्रकाशन सेराथान में कांगड़ी व्याकरण की योजना पर इनका कार्य चल रहा है। डॉ० वेदप्रकाश अग्नि ने कांगडी के पुराने रूपों का दर्शन हिमभारती तथा सोमसी में प्रकाशित लेखों में कराया है। डॉ० मनोहर लाल शर्मा की कृतियों तथा पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों में संस्कार सम्बन्धी शब्दावली का ज्ञान सुलभ है। श्री सन्तराम वत्स्य ने अपनी कृतियों में धार्मिक शब्दावली का दर्शन कराया है। डॉ० ओमप्रकाश सारस्वत ने अपनी विविध रचनाओं में कांगड़ी में प्राकृतिक शब्द दर्शन अपनाया है। संस्कृत स्मारिका (१९७९) में इनकी रचना "पहाड़ी शब्दों का व्युत्पत्तिमूलक प्रयोग विज्ञान" ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में है। गुलेरी बन्धुओं—डॉ० पीयूष, डॉ० प्रत्यूष तथा मण्डलेश्वर

गिरिधर योगेश्वर दास ने "मेरा देस म्हाचल" कांगड़िया दे पुराणे पद्य कनेगद्य रूप आदि रचनाओं में प्राचीन तथा आधुनिक शब्दबोध कराया है। श्री देसराज डोगरा ने कांगड़ी की ठेठ शब्दावली का दर्शन अपनी रचनाओं में कराया है। श्री मनोहर सागर पालमपुरी, नवीन हलदूणवी आदि कवियों ने व्यावहारिक शब्दों का परिचय दिया है। डा० आत्माराम शर्मा ने कांगड़ी में व्यंगयात्मक शब्दशैली दिखलायी है। "हमीरपुर की लोकोक्तियां और मुहावरे" (सोमसी, अक्तूबर १९७७) तथा इनके अन्य लेख शब्द शक्ति प्रधान हैं।

डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा ने "कांगड़ी के व्रतानुष्ठानों में प्रयुक्त शब्दों की भूमिका" (हिमभारती, जून-सितम्बर, १९७५) में व्रत सम्बन्धी शब्दों का विवेचन प्रस्तुत किया है। यशपाल साहित्य परिषद के प्रयास में डॉ० रत्न चन्द्र शस्त्री, श्री द्वारकानाथ कौल, श्री केहर सिंह मित्र, श्री रूप शर्मा, श्री गुलजार आदि कवियों तथा लेखकों ने अपने-अपने क्षेत्र की शब्द महिमा दर्शायी है। परिषद् द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ जालन्धर पीठ दीपिका (१९८३) में श्री पृथुराम शास्त्री ने हिमाचल के तीर्थ स्थानों के वर्णन में धार्मिक शब्दावली के दर्शन कराये हैं।

श्री देवराज संसालवी ने "लोक नाट्य" (१९८६) तथा "लोक गाथाएं" (१९८६) में हिमाचली में विनोद शब्दा वली पर प्रकाश डाला है। श्री चन्द्र वर्कर द्वारा हिमाचल प्रदेश के इतिहास के अनुरुन्धान में राजकाज सम्बन्धी शब्दावली का चयन किया गया है। इनके प्रकाशित शोध पत्र तथा लेखों में कांगड़ी के ठेठ शब्दों का व्यवहार है। श्री प्रेम पखरोलवी ने हिमभारती, सोमसी, हिमधारा आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों में कुल्लू से लेकर कांगड़ा तक संस्कार सम्बन्धी शब्दावली का दर्शन कराया है। श्री सुदर्शन वशिष्ठ ने अपनी रचनाओं में हिमाचली की विविध शब्द रचना का पक्ष लिया है। इन्होंने "कांगड़ी के कुछ शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन" (सोमसी, अक्तूबर १९७६) में समन्वय दृष्टि अपनायी है। "कांगड़ा प्रदेश का लोक साहित्य" (हिमभारती, सितम्बर १९७२) तथा अन्य लेखों में श्री हरवंश गर्ग ने रीति रिवाज सम्बन्धी शब्द संकलन किया है। श्री सुखदेव शर्मा ने हिमसुमन तथा अन्य पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों में जनजीवन सम्बन्धी शब्द संकलन प्रस्तुत किया है। श्री अमर नाथ शर्मा ने (सप्तसिन्धु, जनवरी १९६६) में कांगडी क्रियारूपों का वर्गीकरण किया है। श्री रामकृष्ण कौशल की प्रकाशित पुस्तकों तथा लेखों में किन्नर से कांगड़ा तक हावभावपूर्ण शब्द संग्रह की झलक है। श्री शशिकान्त शर्मा ने "कांगड़ी लोक साहित्य में उपदेशात्मक लकोक्तियां" (सोमसी, अक्तूबर १९७९) में उपदेशात्मक शब्द शैली का चित्रण किया है। श्रीमती सुदर्शन डोगरा ते संस्कार सम्बन्धी शब्दों के संकलन में उत्तम प्रयास किया है। इन्होंने 'कांगड़ा क्षेत्र की लोकोक्तियां और पहेलियां' (सोमसी, अक्तूबर १९७७) में प्रहेलिका शब्द रूप दर्शन कराया है। सुश्री शैला डोगरा ने 'कांगड़ी उपभाषा और प्राकृत में समानता' (सोमसी, अक्तूबर १९७९) में प्राकृतिक गवेषणा में कांगड़ी शब्दों की कल्पना की है।

वैद्य स्वाया राम ने 'पहाड़ी स र ग म' (१९८५) में पहाड़ी गांधी बाबा कांशी राम के कविता संग्रह में पहाड़ी शब्द प्रयोग दर्शाया है। सुश्री स्वर्णकान्ता शर्मा ने 'अप्पू चले परदेश' (१९८२) में तथा अन्य लेखों में व्रत उद्यापन सम्बन्धी शब्दों का दर्शन कराया है। इस पत्र के लेखक के शोध प्रबन्ध 'कांगड़ी' (१९७४) में कांगड़ी की विशिष्ट शब्दावली का परिशिष्ट है।

हिमोत्कर्ष साहित्य परिषद् ऊना द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'हिमोत्कर्ष' में १९७७ से हिमाचली विशेषत: ऊना की संस्कृति, आचार तथा व्यवहार की शब्दावली का रूप मिलता है। श्री हरि सिंह कुंवर, श्री ओमप्रकाश शान्त, श्री खुशी राम शर्मा, श्री ईश्वर दुखिया, श्री आनन्द बंसल आदि विद्वानों ने ऊना की विविध शब्दावली के दर्शन कराये हैं। श्रीमती सरोज सांख्यायन ने 'ऊना की भाषाई स्थिति (सोमसी, अप्रैल १९७९) में सीमावर्ती भाषा भेद बतलाने वाले शब्दों के संकलन का यत्न किया है।

आकाशवाणी शिमला से विविध बोलियों में पहाड़ी कार्यक्रम को सुचारू ध्वनि रूप देने में अनेक कलाकारों और साहित्यकारों का योगदान है, यथा श्रीमती कला ठाकुर, श्री ओंकार लाल भारद्वाज चंगर (रिड़कू राम) श्री अश्विनी गर्ग आदि ने अपने संवादों तथा लेखों में हिमाचली शब्दों का ध्वनिनिरूपण किया है। चंगर के शब्दांकन में श्री रिड़कू राम का अपना ठाठ बाट है। 'लोक नाट्य भगत' (सोमसी अक्तूबर १९८०) में इन्होंने उपहासात्मक शब्द शैली अपनायी है। श्री अश्विनी गर्ग ने 'हिमाचल का पंजल क्षेत्र' (सोमसी, जनवरी १९७९) में देहरा, ऊना, अम्ब क्षेत्र के शब्दों का उल्लेख किया है।

हिमाचली शब्दकोश की सामग्री जुटाने में अनेक शोधकर्ताओं ने अपनी-अपनी दिशा में सराहनीय प्रयत्न किया है। ऐसे अनेक विद्वान हैं जिनके नाम स्मृति पथ में हैं परन्तु उनके संग्रह और प्रकाशन का परिचय उपलब्ध नहीं है। अपने प्रदेश, देश, विदेश में कई शब्द चिन्तक हैं। उनके शब्दसंग्रह का प्रकाशन यत्र तत्र है। हस्तलिखित तथा मौखिक रूप में प्रचुर सामग्री उपलब्ध है पर सब अहस्तान्तरणीय है। केबल उनकी साधना स्वान्तः सुखाय है। ऐसे विद्वानों और विचारकों के नाम और कृति की सूची बन जाय तो यह हिमाचली शब्दकोश रचना में परम सहायक सिद्ध हो जाए। मियां गोवर्धन सिंह ने हिमाचली वाङ्मय की सूची में अनेक विद्वानों के नाम तथा कृतियों का उल्लेख किया है। अकादमी के प्रकाशन "साहित्यकार कलाकार विवरणिका" (१९८८) में हिमाचली विद्वानों का परिचय सुलभ है। डॉ० मन्त्रिणी प्रसाद ने 'कोश प्रणयन' (हिमभारती, दिसम्बर १९७८) में कोश सम्पादन की संभावनाओं का उल्लेख किया है।

श्री नारायण चन्द पराशर पहाड़ी भाषा के शब्दों को एक लड़ी में पिरोने के कार्य में दत्त-चित्त है। दिल्ली से प्रकाशित पत्रिका 'हिमधारा' में इन्होंने पहाड़ी शब्दों का मानक रूप देने का यत्न किया है। संस्कृत, पालि तथा प्राकृतक मूल में ध्वनि और उच्चारणमूलक लिपि संकेत अपनाने पर बल दिया है। इनके नाटक, यात्रावृत्त तथा आलोचनात्मक लेखों में पहाड़ी भाषा

के लुके छिपे शब्दों के दर्शन होते हैं। धम्मपद (सेरा, हमीरपुर १९८५) के पहाड़ी अनुवाद के परिशिष्ट में पालि, संस्कृत, हिमाचली पहाड़ी तथा हिन्दी का शब्द संग्रह प्रस्तुत किया है।

हिमाचली शब्द सम्पदा

२२ अगस्त, १९७५ को सोलन में पहाड़ी हिन्दी शब्दकोश रचना गोष्ठी का आयोजन भाषा विभाग हिमाचल प्रदेश द्वारा किया गया। इसमें प्रदेश के विशेषज्ञों ने भाग लिया और अपनी-अपनी बोली के शब्दों की संकलन विधि प्रस्तुत की। सोमसी में 'हमारी शब्द सम्पदा' नामक प्रकरण का सूत्रपात हुआ। इसमें हिमाचली भाषा के शब्दों का ऐतिहासिक और तुलनात्मक पक्ष में अध्ययन प्रस्तुत किया गया। हिमप्रस्थ पत्रिका में खान पान रहन सहन आदि व्यवहारिक शब्दों का संग्रह तथा विवरण समय-समय पर प्रकाशित होता रहता है जैसे जनवरी १९७१ में श्रीमती श्याम कुमारी के लेख 'हिमाचल में बड़ा खाना धाम' में विशिष्ट शब्दावली का प्रयोग मिलता है। गिरिराज पत्रिका में भी उत्सव सम्बन्धी शब्दावली के दर्शन होते हैं। इसी प्रकार अनेक शोध पत्र और पत्रिकाओं में हिमाचली भाषा के शब्द सुलभ हैं। कतिपय परिचित नाम इस प्रकार हैं: कांगड़ा समाचार, मण्डी समाचार, देहात सुधार, हिम सुमन, शीराजा, विपाशा आदि तथा शिक्षा संस्थाओं की पत्रिकाएं – धौलाधार, भागसू, व्यास, देवधरा, किन्नर ज्योति, किन्नर कैलाश, हमीर, हिमलोक, हिमशिक्षा आदि।

भूगोल शब्द संकलन

भौगोलिक परिधि में हिमाचली शब्द संग्रह प्रदेश के डिस्ट्रिक गजेटियर में उपलब्ध है। इनमें वृक्ष, जड़ी बूटियां, पशु पक्षी स्थान विशेष नाम उपलब्ध हैं। चम्बा स्टेट गजेटियर (लाहौर १९१०) में डॉ. जे. पी. एच. फोगेल की शब्द सूची 'चम्बयाली वकैब्यूलरी ड्रान फ्राम टाइटल डीडज आफ् द 16 एण्ड 17 सैंचुरीज' में राज काज दान सम्बन्धी शब्द हैं। इसी प्रकार मण्डी सुकेत स्टेट गजेटियर १९०४, सिरमौर स्टेट गजेटियर १९०४, डिस्ट्रिक गजेटियर किन्नौर १९७१ आदि में विशेष शब्द सूची सुलभ है।

जनगणना में संगृहीत सामग्री के आधार पर हिमाचल प्रदेश में ग्राम सर्वेक्षण की पद्धति अपनायी गयी। इनमें चम्बा, भरमौर, भटियात, हटली, मण्डी में पंगना, रिवालसर, बिलासपुर में देओली, शिमला में चौपाल, सिरमौर में रेणुका और मानगढ़, किन्नौर में कोठी, कल्पा, कनुम आदि ग्रामों का सर्वेक्षण किया गया है। इन सब की विषय वस्तु और पद्धति का वर्णन विस्तारभय से यहां उचित नहीं है। इस प्रकार सर्वेक्षण और राजपत्र प्रबन्धों की सामग्री हिमाचली शब्दकोश की रचना में महत्वपूर्ण है। आदान प्रदान में व्यवहृत देशी शब्दों का संग्रह उपादेय है परन्तु इन प्रबन्धों में कठिनता रोमन लिपि का व्यवहार है जिसमें ह्स्व, दीर्घ, टवर्ग, तवर्ग का भेद परिचय वश ही सम्भव है। भारतीय भाषाओं के केन्द्रीय शोध संस्थान गंगोत्री, मैसूर द्वारा हिमाचली भाषा सर्वेक्षण किया गया, परन्तु इसका प्रकाशन अभी सामने नहीं आ पाया है।

प्रदेश, देश और विदेश के पर्यटकों के हिमाचल यात्रा सम्बन्धी प्रसंग पुस्तकों तथा लेखों में उपलब्ध हैं जिनमें व्यवहारिक शब्द संग्रह मिलता है। उल्लेखनीय नाम हैं—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का 'हिमालय परिचय', डॉ० महेन्द्र सिंह रन्धावा का 'ट्रेवल्ज इन वेस्टरन हिमालयाज पंजाब, कांगड़ा, कुल्लू' आदि पुस्तकें, अ ंग्रेजेंडर कनिंघम का 'ए ट्रिप थ्रू कुल्लू एण्ड लाहुल चुमुरारी लेक इन लद्दाख' आदि। डॉ. यशवन्त सिंह परमार का शोध प्रकाशन 'पोलिएण्ड्री इन द हिमालयाज' में विवाह सम्बन्धी रीति रिवाज व्यवहार के शब्दों का विशद विश्लेषण है। इसका प्रकाशन विकास, दिल्ली द्वारा १९७५ में हुआ है। डॉ. जोनादन पी. पारी की कृति 'कास्ट एण्ड किनशिप इन कांगड़ा' (लन्दन १९७९) के परिशिष्ट में व्यवहारिक शब्दावली दी है। मियां गोवर्धन सिंह की पुस्तक 'हिस्ट्री आफ् हिमाचल' प्रदेश में शब्दगत अनेक सन्दर्भ उपलब्ध हैं। डॉ. विश्वनाथ ओहरी तथा श्री ओमचन्द हाण्डा की कृतियों में कला सम्बन्धी अनेक शब्दों का उल्लेख है। श्री श्रीनिवास जोशी तथा श्री कृष्ण चन्द शर्मा की रचनाओं तथा पत्रों में भी रुचिकर शब्द उपलब्ध हैं।

विशिष्ट शब्द संग्रह

विषयानुरूप शब्द संग्रह में कई विद्वानों ने रुचि प्रकट की है। श्री मौलू राम ठाकुर ने पक्षियों के नाम तथा उनसे सम्बन्धित क्रिया कलाप पर शब्द संग्रह प्रस्तुत किया है। श्रीमती श्याम कुमारी ने विवाह सम्बन्धी शब्दावली (हिमभारती, जून १९७५), चीश-पाणी (सोमसी, जनवरी १९७६), दूध छाश और हाण्डो पारू (सोमसी जुलाई १९७८), आम्रफल (सोमसी अप्रैल १९८०), हिमाचली में वंश-वांस शब्द कथा (सोमसी, अक्तूबर १९८१) में उपकरण विधि विधान वाचक शब्दों का वर्णन किया है। इस प्रकार छुट फुट शब्द वर्णन विषयानुरूप अनेक पुस्तकों तथा शोध पत्रों में सुलभ हैं जिनका वर्गीकरण होना चाहिए।

संस्कृत शब्द परम्परा

हिमाचली शब्दों के इतिहास की परम्परा में कुछ विद्वानों ने तत्सम और तद्भव शब्दों का उल्लेख किया है। संस्कृत से भी पूर्व वैदिक शब्दों 'जर्फरी, तुर्फरी' की परम्परा में 'फतूरी, लटूरी' आदि शब्दों की गवेषणा का यत्न किया है। संस्कृत विद्वानों और विदुषियों के मत में हिमाचली में संस्कृत शब्दों का प्रयोग आज भी शुद्ध तथा किंचित् विकार रूप में चला आ रहा है जैसे कि डॉ० देवी दत्त शर्मा ने 'हिमाचल प्रदेश की जाति चिनाल में संस्कृत की जीवन्त परम्परा' (सोमसी, जुलाई १९८०) में ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। गादी बोली में मित्र गच्छ रे गच्छ, कच्छ कच्छ आदि शब्दों के व्यवहार से संस्कृत परम्परा की झलक मिलती है। लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों ने समस्त हिमाचली शब्दों का संग्रह न कर केवल संस्कृतकोष रचना की ओर ध्यान दिया। आचार्य सुखानन्द ने "शब्दार्थ चिन्तामणि कोष" भज्जी राज्य के राणा रुद्रपाल के आश्रय में सम्पादित किया जिसका प्रकाशन आगरा में १९२१ वि० में हुआ। श्री गणेशदत्त शास्त्री ने पदनचन्द कोश—२० हजार शब्द संग्रह जुब्बल महाराजा के आश्रय में १८९८ में किया। सुजानपुर टीरा निवासी श्री

कृपाराम पंचकरण मे हरिकोश का प्रकाशन लाहौर से किया। आचार्य दिवाकर दत्त शास्त्री ने अभिनव शब्दकोश की योजना १९५८ में बनायी। इन्होंने 'संस्कृत माध्यम से पहाड़ी परिचय' (हिमभारती जून १९७४) तथा 'पहाड़ी भाषाओं पर संस्कृत का प्रभाव' (हिम प्रस्थ १९५८) में सिद्ध किया कि संस्कृत की शब्दावली न केवल अपने अविकृत रूप में सुरक्षित है अपितु इसका सम्पूर्ण व्याकरणिक ढांचा भी अपने मूल रूप में सुरक्षित है। इस दिशा में संस्कृत शोध संस्थान मशोबरा में आचार्य केशव शर्मा तथा आचार्य रत्न कुमारी शर्मा संस्कृत मासिक पत्रिका 'दिव्य ज्योति' तथा अन्य रचनाओं से पहाड़ी तथा संस्कृत रूप रेखा में कृत प्रयत्न है।

श्री दुर्गादत्त शास्त्री 'तर्जनी, वत्सला, तृणजातकम्' आदि रचनाओं में पर्वतीय शब्दों की व्युत्पत्ति और प्रयोग में सिद्धहस्त हैं। इनके व्युत्पत्ति सम्बन्धी लेख (हिमभारती १९६९) में तथा पहाड़ी में संस्कृत नाटक अनुवाद दर्शनीय हैं। श्री रमाकान्त जोशी ने 'पहाड़ी शब्दों का संस्कृत में मूलस्वरूप' (हिमभारती, दिसम्बर १९७६) में ऐतिहासिक गवेषणा प्रस्तुत की है। श्री तुलसी रमण ने हिमाचली-संस्कृत शब्द संग्रह की योजना बनायी है। आचार्य शालिग्राम शास्त्री ने पहाड़ी विशेषतः बघाटी का न्याय पक्ष लिया है।

स्व० गोपाल शर्मा शास्त्री ने 'हिमाचल प्रशस्ति (गरली, २०२७ वि०) में ऐतिहासिक विचार धारा में उपयोगी शब्दों का बोध कराया है। स्व० वासुदेव शास्त्री ने धार्मिक परम्परागत शब्द दर्शन कराया है। श्री मोती राम शास्त्री, श्री जगनाथ शास्त्री, श्री गौरीशंकर शास्त्री तथा अन्य विद्वर्ग ने संस्कृत हिमाचली शब्द संग्रह का प्रयास किया है। सुश्री प्रतिभा शर्मा 'सन् १९६० के पश्चात् हिमाचल में संस्कृत लेखन' (हिम संस्कृत सरिता, प्रथम भाग, १९६०) में संस्कृत के विद्वानों का परिचय कराया है जिनका योगदान संस्कृत के साथ-साथ हिमाचली भाषा में भी प्रशंसनीय है। ऐसे अनेक विद्वान हैं जिन्होंने संस्कृत परम्परा में हिमाचली शब्दों का चिन्तन और मनन किया है जिनमें से कुछ विद्वानों का उल्लेख 'हिमाचली में संस्कृत परम्परा' (सोमसी जुलाई, १९७९) में किया गया है। यशोदा प्रकाशन सुजानपुर टीरा से प्रकाशित प्रभुयशोभावन (२०३४ वि०) तथा 'श्रीमद्भगवद्गीता-संस्कृतामूल कांगड़ी भुवनाख्या व्याख्या समेत' (२०३९ वि०) में संस्कृत कांगड़ी शब्दों का अक्षरशः बोध है।

सम्पादन योजना

हिमाचल प्रदेश की बोलियों तथा उपबोलियों में विविध रूप दर्शन मिलता है जिसको लिपिबद्ध करने का प्रयत्न लेखकों, कवियों, कथाकारों तथा आलोचकों ने किया है, परन्तु अभी भी दूर छोर में रहने वाले, पुरानी छाप लिये प्रदेश से कहीं बाहर न गये चिरवासी व्यक्तियों के उच्चारण में ठेठ रूप मिलता है जिसे लिपिबद्ध करने में सुश्रुत एवं सिद्धहस्त की आवश्यकता है। तन्त्र युग के साथ अब यन्त्र युग में बहुविध उपकरण उपलब्ध हैं जिनके प्रयोग से अभिलेखन, अनुश्रवण तथा अनुवाद सम्भव है। यदि उच्चारण यन्त्र में सुनी सुनायी सामग्री के आधार पर भी शब्दों का

संकलन कर और उसे वैज्ञानिक पद्धति में ध्वन्यात्मक लेखन में छायाचित्र के रूप में प्रस्तुत किया जाय तो मुद्रण और प्रकाशन की प्रतीक्षा तक अनेक शोधकर्ता इस अनुपम शब्द भण्डार का लाभ उठा सकते हैं तथा अपने तार्किक विचारों से भाषा, कला एवं संस्कृति में अभिनव शैली का दर्शन करा सकते हैं।

शब्द विश्लेषण प्रक्रिया से पूर्व अनेक पद और अनुपदों की सरणि अपनानी पड़ती है। पहली समस्या बोली के रूप तक पहुंचाने की है तदनन्तर ध्वनितत्व को पहचनाने की समस्या है। व्युत्पत्ति की समस्या है। उदाहरण प्रत्युदाहरण की समस्या है और सबसे बड़ी समस्या है न मानूं। जिस व्यक्ति ने जो शब्द जहां जिस तान मे सुना है वह उसे प्रधान मानेगा। वह दूसरे शब्द को प्रामाणिक नहीं मानेगा। ध्वनि के विश्लेषण में ह्रस्व और दीर्घ, शिथिल और द्रुत, आरोह और अवरोह आदि में मतभेद उपस्थित होगा। जिन उपभाषाओं को कोश में सम्मिलित करना है उनमें बहुधा रूप लिखित नहीं है। लोककथाओं और लोकगीतों में जिस शब्द का श्रवण होता है वह उच्च, मध्य तान के कारण विषमता उपस्थित कर देता है। बाल युवा वृद्ध नर नारी से शब्द सुनकर और उनका संग्रह कर विश्लेषण करना कठिन है। प्रत्येक अवस्था में नये शब्द तथा नयी ध्वनि आती रहती है। दादी अम्मा की भाषा और उच्चारण घिस पिट जाता है पर उसका तारतम्य मधुरिमा तथा उपयोगिता क्षीण नहीं होती है। वर्णविपर्यय तथा वर्णलोप के कारण विश्लेषण में समस्या खड़ी हो जाती है। कौन सा शब्द प्रामाणिक माना जाये और उसे तदनुरूप लिपिबद्ध किया जाय—यह एक समस्या है। कास्ती, काश्ती, कौशती, कादसी, कास्सी जैसी समस्या विविध उच्चारण में उपस्थित हो जाय तो इस झंझट से छूटने के लिए संकलन कर्ता संस्कृत की शरण लेकर एका**दशी** लिखना उचित समझता है। वह सभी रूपों का त्याग करता है जो बोलने और सुनने में विचित्र मनोहारी श्रुतिमधुर होते हैं। दूर गांव तक आजकल पत्र मिली जुली हिन्दी और पहाड़ी में हाण्डू पारू, धार बाट सुखसान्त के रूप में पहुंचता है। हिन्दी में अपना भाव व्यक्त नहीं होता है। इसलिए अपनी बोली का आश्रय लेना पड़ता है। अन्यथा अर्थ का अनर्थ होने की सम्भावना बनी रहती है। 'औज मौर गया' में शक्ति, मोरपक्षी और मरणान्त भाव उपहास का कारण बन सकता है जैसे उर्दू लेखन के प्रसंग में कहा जाता है कि 'अजमेर गया' के स्थान पर 'आज मर गया' पढ़ा गया और श्रोताओं में शोक की लहर छा गयी। यह केवल लिपि के दोष के कारण है।

अतः विविध बोलियों में शब्द संग्रह के साथ ध्वन्यंकन पर भी विशेष ध्यान देना होगा जिससे परम्परा सुरक्षित रहे। अन्यथा स्वरमात्र के अपराध से भी शब्दकोश में भ्रान्ति उपस्थित हो सकती है। इसीलिए कहा गया है कि शब्द का बोध सम्यक् होना चाहिए और प्रयोग भी सम्यक् होना चाहिए नहीं तो यह वाणी का वज्र बनकर भयंकर स्थिति उत्पन्न कर देता है;

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥

वि० वि० शोध संस्थान
पंजाब विश्वविद्यालय,
साधु आश्रम, होशयारपुर-१४६०२१

पट्टन घाटी (लाहुल) के कुछ मुख्य मेले त्यौहार

□ बलराम

यह तो सभी को भली-भान्ति मालूम है कि जहां तक प्राकृतिक सम्पदा का सम्बन्ध है, प्रकृति ने लाहुल-स्पिति के साथ बहुत अन्याय किया है। गर्मियों के केवल चार-पांच महीनों के दौरान ही न केवल अपने परिवार के लिए खाने पीने का सामान जुटाना होता है अपितु पालतु पशुओं के लिए भी साल भर के लिए घास इत्यादि का प्रबन्ध करना पड़ता है।

जीवन के कठिन परिश्रम के पश्चात् मनोरंजन का होना बहुत आवश्यक है, फिर चाहे यह कुछ क्षणों के लिए ही क्यों न हो। लाहुल के कठिन जन जीवन को जहां तक हो सके, सुमधुर बनाने के लिए कितने ही मेले तथा तीज-त्यौहार हैं जो कि वहां के लोगों के जीवन की थकान को दूर करने में सहायक सिद्ध होते हैं। पट्टन घाटी के कुछ मुख्य मेले तथा त्यौहार हैं 1 उदन या उतन 2. खोहल या खोगल 3. कुहं एवं कुहया 4. सिल एवं पुना 5. दशें 6. पौरी तथा 7. शे्चुम याशेव्चुन।

उदन या उतन : सर्दियों के शुरु में ही मनाया जाने वाला एक त्यौहार है। गर्मियों के तीन-चार महीने पलक झपकते ही निकल जाते हैं। यहां के लोगों को यह अच्छी तरह से मालूम होता है कि सर्दियों में इन्हें कई प्रकार की कठिनाईयों का सामना करना पड़ेगा। इसके बावजूद भी इन्हें उस पुरानी कहावत पर पूर्ण विश्वास है जो यह सन्देश देती है कि 'हवा का कोई भी झौंका इतना बुरा नहीं होता है कि किसी को भी कोई फायदा नहीं पहुंचाये।' इस लिए वे 'उतन' मना कर सर्दियों की चुनौतियों को स्वीकार करते हैं। शायद इन लोगों को 'उतन' मनाते देख कर अंग्रेज़ों के प्रसिद्ध कवि शैले (Shalley) ने यह गीत गाये हों 'अरे ओ पश्चिम से बहने वाली हवा, अगर सर्दियों का मौसम आ जाये तो क्या बसन्त पीछे रह सकता है?'

'उतन' के दिन ईष्ट देवता की पूजा की जाती है और दूध के बने पकवान बनाये और खिलाये जाते हैं। 'उतन' सामान्यता जनवरी महीने में मनाया जाता है।

खोहल या खोगल : 'उतन' के लगभग एक महीने के बाद 'खोग़ल' या 'खोहल' आता है जो कि साधारणतया पूर्णमाशी की रात को मनाया जाता है क्योंकि इस त्यौहार को मनाने के

लिए निश्चित तिथि चांद पर निर्भर करती है, इसलिए यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह त्यौहार कब मनाया जायेगा। कभी तो यह जनवरी के आखिरी सप्ताह में मनाया जाता है तो कभी फरवरी महीने में।

चन्द्रा और भागा घाटी के लिए 'खोगल' नव-वर्ष का सन्देश लेकर आता है। केलंग और खोक्सर के लोग इसे 'लोसर' कह कर पुकारते हैं। स्पिति के लोग भी 'लोसर' नव वर्ष के रूप में मनाते हैं अन्तर केवल इतना है कि स्पिति वालों का 'लोसर' नवम्बर या दिसम्बर में आता है।

'खोहल' के दिन गांव के सारे पुरुष किसी एक घर में इक्ट्ठे होते हैं जहां कि उन्हें चक्ती, चड़्मु (स्थानीय पेय के दोरूप) और अल्पाहार इत्यादि दिया जाता है। दो-तीन घण्टे के बाद वे लोग किसी दूसरे के घर जाते हैं जहां फिर वही दौर शुरु हो जाता है। यह सिलसिला आधी रात तक चलता रहता है। लगभग आधी रात के समय नागाड़ा वादक जो साधारण रूप से चाण (हरिजन) होते हैं, किसी घर की छत पर बैठ कर बांसुरी इत्यादि के साथ-साथ नगाड़े बजाने शुरु कर देते हैं जो कि इस बात का द्योतक होता है कि 'खोहल' मनाने का उपयुक्त समय आ गया है। नगाड़े की आवाज़ को सुनते ही ये लोग 'हल्ला' अर्थात् देवदार की लकड़ियों की जलती हुई मशालों को घर से बाहर निकालने के लिए जल्दी-जल्दी अपने घर की ओर चल पड़ते हैं। मशालों को लेकर जब वे अपने-अपने मकान के हर दरवाज़े से होकर गुज़रते हैं तो उस समय ज़ोर-ज़ोर से झाऽऽऽ हुईऽऽऽऽ की आवाज़ लगाते हैं। साथ ही साथ काठु (buck-wheet) के भुने हुए आटे को उस मशाल पर फैंकते जाते हैं जो कि उस मशाल को और भी प्रज्वलित करता जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि उस विशेष मशाल, जिसे स्थानीय भाषा में 'नमहल' कह कर पुकारा जाता है, के साथ ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ें लगाने से वे प्रेतात्माओं को डराते व धमकाते हैं, और इस तरह से अपने-अपने घरों को बुरी नज़रों से बचाते हैं। इस प्रकार से गांव के लगभग सारे पुरुष जलती मशालों को लेकर एक जगह इक्ट्ठे होते हैं और उन मशालों को एक जगह पर इकट्ठा करके जलाते हैं और फिर इसके इर्द गिर्द नाचते और गाते हैं। फिर इसके बाद छोटी-छोटी मशालों को लेकर दूर से एक विशेष पेड़ या पत्थर के टीले की ओर फैंकते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अगर कोई पुरुष एक ही बार के प्रयत्न में एक मशाल को उस विशेष पेड़ या पत्थर के टीले के ऊपर स्थापित करने में सफल हो जाता है तो आने वाले वर्ष में उसके घर एक पुत्र जन्म लेता है। फिर इसके बाद घर वापिस आकर अपने इष्ट देवी-देवताओं की पूजा की जाती है। तब कहीं जाकर रात का खाना खाया जाता है।

'नमलह' निकालने से पहले शाम को कुछ और भी छोटी-छोटी मशालें निकाली जाती हैं जिन्हें कि 'सदलह' के नाम से जाना जाता है और जिन्हें निश्चित स्थानों पर देवी-देवताओं के लिए चढ़ाया जाता है। 'सदलह' शब्द 'सद्' (अर्थात देवी या देवता) और 'हल्ला' शब्दों से मिलकर बना है जबकि 'नमलह' शब्द 'नम' (अर्थात् प्रातः काल) और 'हल्ला' शब्दों से मिलकर बना है। इस तरह से हम देखते हैं कि 'सदलह' और 'नमलह' में एक मुख्य भेद तो यह है कि 'सदलह' तो

केवल देवी-देवताओं के लिए चढ़ाये जाते हैं जबकि 'नमलह' दिन के लगभग एक बजे निकाला जाता है और इसे प्रेतात्माओं को डराने धमकाने का एक प्रतीक माना जाता है। दूसरा मुख्य अन्तर यह है कि 'सदलह' 'नमहल' से आकृति में कुछ छोटे होते हैं। एक और मशाल सम्बन्धित परिवार के सबसे बड़े खेत में भी डाली जाती है जहां पर अगले आने वाले मौसम के दौरान अच्छी खेती होने के लिए इष्ट देवी देवता की पूजा की जाती है।

'खोगल' के एक या दो दिन पहले 'हल्ला-बेल्ड़ी' का त्यौहार होता है। इस दिन 'सदलह' और 'नमलह' इत्यादि बनाये जाते हैं। देवदार की लकड़ी को चीर कर उनके बारीक-बारीक टुकड़े बनाये जाते हैं और फिर बेली के वृक्षों की नर्म-नर्म टहनियों से तीन जगहों पर बान्ध कर सुखाने रख देते हैं ताकि 'खोगल' के दिन वे आसानी से जल सके। उसी दिन सर्दियों में रहने वाले कमरे की एक दिवार पर चौकोर लाईनों के बीच में सूर्य, चांद, भेड़, बकरी व गेहूं के एक बाली इत्यादि की आकृतियां बनाई जाती हैं। इसे 'बराज़ा' कहा जाता है। दो खास प्रकार के बड़े-बड़े 'हल्ला' और बनाये जाते हैं जिन्हें 'चाउग' कहते हैं। 'खोहल' के दिन इन्हें ठीक 'बराज़ा' के सामने लगभग अंग्रेज़ी के अक्षर A के समान Λ इस आकृति में दीवार के सहारे टिका कर रख देते हैं, और फिर 'चाउग' और 'बराज़ा' दोनों की पूजा की जाती है।

एक तरफ तो बर्फ़ीली चांदनी रात और उस पर प्रज्वलित 'हल्ला' से फैली रोशनी। नज़ारा देखते ही बनता है। जैसे दूसरों के लिए दिवाली रोशनी का त्यौहार है वैसे ही लाहुल के लोगों के लिए भी 'खोहल' एक रोशनी का त्यौहार है।

'खोहल' के बाद ही 'शिखारी-अया' की पूजा शुरु होती है। शिखारी, लक्ष्मी की तरह धन-धान्य की देवी मानी जाती है। यह जानने के लिए कि आने वाले वर्ष में फसलें इत्यादि कैसी होंगी। इसके लिए घास के बने एक जोड़ी पुल्ले (जूटे) एक सुरक्षित स्थान पर रख देते हैं। दो-तीन दिनों के बाद खोल कर देखते हैं। जो चीज़ निकलेगी आने वाले वर्ष में उसकी कमी नहीं रहेगी। यहां पर बौद्ध धर्म का प्रभाव स्पष्ट लगता है, क्योंकि 'शिखारी-अया' बौद्ध धर्म अनुयायिओं की देवी है। 'अया' का मतलब होता है दादी या नानी।

कुहं एवं कुहया : 'खोहल' के पन्द्रह दिन के पश्चात अर्थात अमावस के दिन एक और त्यौहार आता है जिसे 'कुहं' के नाम से जाना जाता है। पड़ौसी जिलों के लोग इसे 'फागली' के नाम से जानते हैं। पट्टन घाटी का यह सबसे मशहूर त्यौहार है, जिसे वहां के लोग नव वर्ष के रूप में मनाते हैं। छोटे बड़े सभी बहुत उत्सुकता के साथ इस त्यौहार का इन्तजार करते हैं, क्योंकि उस दिन सभी को नये-नये कपड़े पहनने को मिलते हैं। उस दिन सवेरे लड़के लड़कियां अपने बड़ों से शुभकामनायें प्राप्त करते हैं और आपस में फूल बांटते हैं जिसे कि शुभ नव वर्ष का प्रतीक माना जाता है। गेंदे के सूखे फूलों और रंगीन चमकदार कागजों (glazed papers)

इत्यादि से बने यह फूल कई प्रकार के होते हैं जैसे कि 'पन्ढा' 'झोलू' और 'टर-टर'। 'झोलू' और 'टर-टर' तो टोपी में डाले जाते हैं जबकि 'पन्ढा' कोट के बटन-होल (button hole) में डालते हैं। 'टर-टर' फूल भी दो प्रकार के होते हैं। एक तो लगभग वैसा ही होता है जैसाकि पड़ौसी ज़िला किन्नौर में प्रयोग में लाया जाता है तथा दूसरा नीले रंग के 'पोरलो' फूल से बनाया जाता है। अतः उसे पोरलो टर-टर कहा जाता है।

'कुहं' से कुछ दिन पहले घर के अन्दर की तरफ की दिवारों में लिपाई-पुताई भी की जाती है। सुन्दर कपड़े पहने और मुस्कानों के फूल बिखेरते हुए छोटे बड़े सभी झुण्ड के झुण्ड बना कर एक घर से दूसरे घर में घूमते हैं। हर जगह उन्हें 'मारचू' या 'मच्चू' और चाय इत्यादि नाश्ते के लिए प्रस्तुत किया जाता है। बड़ों को 'चक्ती', 'चड़मु' और 'सरा' भी पेश किया जाता है।

'कुहं' से एक दिन पहले 'कुहया' या 'कुहयाग्' का त्यौहार होता है जिस दिन 'मारचु' घी में तले हुए एक किस्म के भटूरे बनाये जाते हैं। 'कुहया' के दिन भी एक दो आदमी उसी गांव में रहने वाले अपने किसी नज़दीकी रिश्तेदार के घर त्यौहार की बधाई देने जाते और बदले में आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। इस प्रथा को 'तिप्याचि' या 'तिप्याक्चि' का नाम दिया जाता है। इसी दिन एक किल्टे में बर्फ कूट-कूट कर भर दिया जाता है ताकि उल्टाने पर बर्फ किल्टे का सा रूप धारण कर ले। 'कुहं; के दिन घर का एक मुख्य सदस्य सुबह के लगभग एक-दो बजे जाकर उस बर्फ को किल्टे से अलग कर के एक जगह पर उसे खड़ा कर देता है। फिर उसके बाद उसकी पूजा की जाती है। कई-कई सियाने लोग पूजा के दौरान ही यह पता लगा लेते हैं कि आने वाला वर्ष शुभ सन्देश लेकर आ रहा है कि नहीं।

जहां तक कि बर्फ की पूजा का सम्बन्ध है यहां पर यह बता देना उचित रहेगा कि सारे हिमाचल प्रदेश में ही नहीं बल्कि सारे देश भर में लाहुल ही एक ऐसी जगह है जहां कि खेती पूर्ण रूप से सिंचाई पर निर्भर करती है। अगर सर्दियों में बर्फ नहीं पड़ी तो गर्मियों में नदी नाले सूख जाते हैं। अतः सिंचाई के लिए पानी का अभाव हो जाता है। इसलिए जहां खेती शत प्रतिशत सिंचाई पर निर्भर हो वहां पर बर्फ का पूजा जाना कोई अद्‌भुत बात नहीं है।

सिल एवं पुना : कुहं के तीसरे दिन 'पुना' त्यौहार आता है। इस दिन गांव के सारे पुरुष अच्छे-अच्छे कपड़े पहने दाएं हाथ में तलवार, छुरा या गडांसी, (गंडासी को स्थानीय लोग गंडास कहते हैं) तथा बांय हाथ में 'फैंजा' (अर्थात टोकरी) लिए जलूस के रूप में जाकर एक जगह इक्ट्ठे होते हैं। इस जलूस का नेतृत्व नगाड़ा बादक करते हैं। 'फेंज़ा' के अन्दर काठु के आटे का बना बकरे का एक पुतला होता है जिसे 'दन्ज़ा' कहा जाता है। जलूस के रूप में ये लोग नज़दीक के किसी एक खेत में जाते हैं जहां सामूहिक रूप से विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा की जाती है। इसी दौरान आटे के उस बकरे की बली दी जाती है। बेली के वृक्ष की एक छोटी सी टहनी प्रसाद के रूप में घर ले आते हैं। आते-आते एक दूसरे को शुभ कामनाएं भी देते जाते हैं।

'पुना' से एक दिन पहले और 'कुहं' के एक दिन बाद 'सिल' त्यौहार आता है जिस दिन 'पुना' के लिए 'दन्जा' तैयार किया जाता है। 'पुना' सर्दियों में मनाया जाने वाला अन्तिम त्यौहार है।

दशें : पट्टन घाटी में सर्दियों में मनाया जाने वाला यह एक मात्र मेला है। यह मार्च महीने में मनाया जाता है। यह मेला जुण्डा गांव के 'सओ' में मनाया जाता है। 'सओ' गांव के देवता की जमीन होती है जहां कि गांव की ओर से सामूहिक तौर पर उसकी पूजा की जाती है। 'दशें' से एक दिन पूर्व गांव के लोग 'सओ' में जाकर बर्फ का एक गोलाकार ढेर बनाते हैं, जिसकी ऊंचाई कम से कम सात फुट होती है। इस गोलाकार बर्फ के ढेर का व्यास ज्यों-ज्यों कम होता जाता है त्यों-त्यों इसकी ऊंचाई बढ़ती जाती है। जब यह गोलाकार ढेर बन जाये तो तब उसके ऊपर थोड़ा-थोड़ा करके पानी डाल देते हैं ताकि रात को बर्फ जम कर एक पिण्ड बन जाये। दूसरे दिन 'दशें शुरू हो जाता है। दूर-दूर से लोग अपने नये कपड़ों में सज-धज कर मेला देखने आते हैं। 'तओं' के एक किनारे में नगाड़े और बांसुरी वादक आकर बैठ जाते हैं। उनके खाने पीने का प्रबन्ध वहां का एक भाट परिवार करता है। यहां तक कि उनको जितना चाहे 'चैक्ती और सुरा पिलाया जाता है। दिन के लगभग दस बजे तीन भाट परिवारों के सभी पुरुष सदस्य सज धज कर आते हैं और बर्फ के इस ढेर के इर्द-गिर्द नाचते नाचते पांच छः चक्कर लगाते हैं और चारों दिशाओं में गाते हुए नहीं खास किस्म का फूल, फैंकते है। इसके बाद जो चाहे वह वहां जाकर नाच सकता है, 'पऊर'—एक अपितु केवल बांसुरी और नगाड़े के तान पर। शाम को जाहलमा के हिडिम्बा देवी के मन्दिर के'गुरंह' (चेले) आकर अपना कर्तव दिखाते हैं और आने वाला साल अच्छा रहेगा या बुरा इसके बारे में भविष्यवाणी करते हैं।

शेंचुम : इसे 'शेव्‌चुम' कहकर भी पुकारते हैं। यह गर्मियों में मनाये जाने वाले मुख्य त्यौहारों में से एक है। यह त्यौहार सामान्यतया जुलाई महीने में मनाया जाता है जबकि जौ और गेहूं की फसलें पककर तैयार हो जाती हैं। इस त्यौहार के कुछ दिन पहले घर की बाहरी दिवारों की लिपाई की जाती है। इस दिन गांव के सभी लोग अपनी भेड़ बकरियों को नजदीक के एक चश्मे के पास ले जाते हैं। वहां जाकर भेड़ बकरियों को और उनके साथ आने वाले सभी लोगों को शुद्ध घी में बने सत्तु के लड्डू खिलाए जाते हैं। इस लड्डू को 'टोडु' कहते हैं। चश्मे की भी पूजा की जाती है और भेड़ बकरियों की बढ़ौतरी के लिए प्रार्थना की जाती है। इस रस्म में भाग लेने के लिए गृहणियां खूब सज-धज कर आती हैं।

पोरी : पट्टन-वादी में मनाया जाने वाला एक मात्र मेले का नाम 'पोरी' है। त्रिलोक नाथ गांव में मनाया जाने वाला यह ग्रीष्म ऋतु का एक प्रसिद्ध मेला है। यह प्रायः अगस्त महीने में मनाया जाता है। 'पोरी' के दिन भगवान त्रिलोकी नाथ जी की मूर्ति को दूध और दही से नहलाया जाता है। दिन के लगभग दस बजे बहुत सारे लोग ढोल, नगाड़े और नरसिंह इत्यादि

बजाते हुए मन्दिर की परिक्रमा करते हैं। इसी दौरान मन्दिर के एक घोड़े से भी परिक्रमा करवाई जाती है। कहते हैं कि इस परिक्रमा के दौरान घोड़ा पसीने से लगभग नहा सा जाता है, हालांकि उस पर कोई सवार या बोझ इत्यादि कुछ भी नहीं होता है। इसका कारण त्रिलोकी नाथ जी का अदृश्य रूप से घोड़े पर सवार होना बताया जाता है। इसके बाद घोड़े को उस जलूस के साथ ही राणा, जो कि मन्दिर का मुखिया अर्थात कारदार होता है, के घर तक ले जाया जाता है जहां कि राणा उस जलूस का स्वागत करके अपने घर ले जाता है और नाश्ता इत्यादि खिलाता है। थोड़ी देर बाद वह खूब सज-धज कर बाहर आता है और उसी घोड़े पर बैठ कर जलूस के साथ मेले के स्थान पर आता है जो कि मन्दिर से थोड़ी दूरी पर एक मैदान में लगता है। यहां एक कुटिया है जहां राणा अपने सहयोगियों के साथ दिन भर बैठा रहता है। क्योंकि राणा एक बहुत बड़ा जागीरदार हुआ करता था, इसलिए हो सकता है कि जनता को साल भर में एक बार इस तरह से दर्शन देने की यह प्रथा चल पड़ी हो। यह भी हो सकता है कि पहले वह यहां बैठ कर मेला देखता हो, जो कि बाद में एक प्रथा ही बन गई।

लाहुल में बौद्ध धर्म ८वीं शताब्दी में आया और इसके लाने वाले थे पद्मसम्भव[1]। पद्मसम्भव काश्मीरी थे जिन्होंने बंगाल जाकर तान्त्रिक शिक्षा प्राप्त की थी[2]। उनके लाहुल आने से पहले, जैसे कि नाम से ही मालूम होता है, यह शिवजी (त्रिलोकी नाथ) का मन्दिर था। पद्मसम्भव के बौद्ध धर्म प्रचार और प्रसार करने के बाद त्रिलोकी नाथ मन्दिर, हिन्दू मन्दिर से एक बौद्ध मन्दिर बन गया और शिवजी की मूर्ति के स्थान पर छः भुजाओं वाली भगवान् अवलोकितेश्वर की मूर्ति आ गई। बौद्ध धर्म के कारण मन्दिर की मूर्ति तो बदल गई परन्तु इससे न तो मन्दिर का नाम बदला और न ही गांव का।

इस सब के बावजूद हम त्रिलोक नाथ के मन्दिर को न तो पूर्ण रूप से हिन्दू मन्दिरों की श्रेणी में रख सकते और न ही बौद्ध गोम्पों की श्रेणी में, क्योंकि इसमें दोनों के ही गुण विद्यमान हैं। यह पूर्ण रूप से मन्दिर इसलिए नहीं है क्योंकि इस मन्दिर का पुजारी एक बौद्ध लामा है। इसलिए वह पूजा इत्यादि भी उसी ढंग से करता है। दूसरी बात यह है कि इस मन्दिर में भेड़ बकरियों की बलि देने की कोई प्रथा नहीं है और तीसरी बात मन्दिर बौद्ध धर्म के प्रतीक 'मनेलाक्खोर' और 'मने लाक्खोर' (prayer wheels) का होना है।

परन्तु यह पूर्ण रूप से गोम्पा भी नहीं है, क्योंकि मन्दिर का मुखिया एक हिन्दू है। दूसरी बात यह है कि इस मन्दिर का ढांचा लाहुल में विद्यमान गोम्पों की तरह नहीं बल्कि मैदानी इलाकों में स्थित हिन्दू मन्दिरों जैसा है। तीसरी बात इस मन्दिर में तांत्रिक चित्रों (थङ्का

1. History of the Punjab Hill States, J. Hutehinson & J. Ph. Vogel, Deptt. of Languages and Culture (H.P.), Vol. II, p. 475

2. Iconography of Religions,-An Introduction, Albert C. Moore, S.C.M. Press Ltd. London, p. 197.

एवं भित्तिचित्र) का न होना है जो कि लाहुल के हर गोम्पे में पाई जाती हैं। इसी प्रकार से इस मन्दिर में मनाया जाने वाला एक मात्र मेला 'पौरी" भी एक हिन्दू मेला ही है। धार्मिक सहिष्णुता का इससे अच्छा उदाहरण और क्या हो सकता है।

'पोरी' ही एक ऐसा मेला है जहां अस्थायी दुकानें लगती हैं। हरे नीले, लाल पीले रंग के कपड़े के टुकड़े मन्दिर से प्रसाद के रूप में मिलते हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ त्यौहार ऐसे भी हैं जो सारे पट्टन घाटी में तो नहीं अपितु कहीं-कहीं ही मनाये जाते हैं जैसे कि 'जात्र' और 'छेशु'। जात्र तो जुण्डा, नालड़ा और जसरथ गांव में अगस्त सितम्बर में मनाया जाता है। इसका खर्च सामूहिक रूप से सारे गांव वाले उठाते हैं। परन्तु कभी-कभी गांवों के देवता के कहने पर एक अकेला परिवार भी इसका खर्च उठाता है। 'जात्र' के दिन गांव के देवता को पालकी में बिठा कर जलूस के रूप में 'सओ' ले आते हैं जहां पर एक बकरे की बलि शाम को दी जाती है तथा एक बकरे की बलि सुबह दी जाती है। सभी गांव वालों को खाना भी खिलाया जाता है। सारी रात नाच गाना चलता रहता है। दूसरे दिन जलूस के रूप में ही देवता की पालकी को ले जाकर मन्दिर में रख देते हैं।

अगर 'जात्र' का खर्च केवल एक ही आदमी को उठाना हो तो वह देवता की पालकी को 'सओ' के स्थान पर अपने घर ले आता है ताकि सब कुछ फिर उसी ढंग से चलता रहे।

'छेशु' पट्टन घाटी में केवल शांशा गांव में ही मनाया जाता था, परन्तु अब कुछ वर्षों से वहां भी यह नहीं मनाया जाता है। शांशा गांव का 'छेशु' उसी ढंग से मनाया जाता था जिस प्रकार कि भागा घाटी के शशुर गांव में मनाया जाता है।

इस तरह से मेलों और त्यौहारों का यह सिलसिला लगातार चलता रहता है।

संयुक्त निदेशक,
श्रम ब्यूरो, शिमला-४

सराहन का देवता-सियाना ऋषि

☐ डॉ० बलदेव ठाकुर

बहुत पुराने समय की बात है शियाना नाम के एक ऋषि झील मानसरोवर की परिक्रमा करके अपनी शक्ति से लोगों को प्रभावित करते हुए कुल्लू के आऊटर सिराज के सराहन गांव में पहुंचे। ऋषि महाराज की ज्ञान और शक्ति के कारण चारों तरफ प्रसिद्धि फैली। इलाके के सब छोटे-बड़े दुःखों से निवारण के लिए लोग उनके दर्शन को उमड़ने लगे।

उन्हीं दिनों चूड़ा जोत पर जोगणियों और राक्षसों का उपद्रव लोगों को बड़ा दुःख दे रहा था। गांव से कुछ दूरी पर ही ये राक्षस लोगों को तंग करते थे। भिन्न-भिन्न ढंग के मानसिक और शारीरिक रोग के कारण बन गये थे ये भूत-प्रेत। और तो और लोगों के खेतों और घरों में भी ये उन्हें चैन से काम नहीं करने देते थे।

शियाना ऋषि के बल और ज्ञान पर आस्था रखते हुए गांव के सब लोगों ने एक दिन मुनिवर को उन राक्षसों के बारे में बताया ऋषि महाराज ने कई ढंग के उपाय लोगों को बताए और स्वयं भी राक्षसों से भिड़ गए, पर असफल रहे। मुनिवर को ऐसा लगा कि इनके सामने उसकी एक चाल भी सफल नहीं हो रही है। फिर क्या था। एक दिन ऋषि ने उन राक्षसों जोगणियों को खूब अपशब्द सुनाए, उन्होंने उनको अश्लील से अश्लील शब्द सुनाए। अश्लील शब्दों ने असर दिखाया। राक्षसों ने एक-एक करके मुनि के पास आकर क्षमा मांगनी शुरू की। उसके बाद शियाना ऋषि के आदेश पर राक्षसों ने लोगों को दुःखी न करने का वायदा किया।

शियाना ऋषि के सराहन में बस जाने पर अब लोगों को एक देव-शक्ति मिल चुकी थी। सराहन गांव के पश्चिम में विशलेऊ धार के नीचे एक बड़ा मैदान है जिसे लोग अभी भी 'बागा' नाम से पुकारते हैं। इस मैदान में एक किनारे पर 'झ़राणे' नाम का एक परिवार रहता था। इस परिवार की एक लड़की 'झ़राणी' इस ऋषि पर मोहित हो गई। समय मिलने पर जहां-तहां वह मुनिवर से आंख मचोली करने लगी। पर ऋषि मुनि लोग तो इस प्रकार के मोह-माया से सदा मुक्त रहने की कोशिश करते रहे हैं। शियाना ने भी झ़राणी को सदा अपने से दूर रखा। जब भी झ़राणी गांव की तरफ आती तो 'झीटो खेच, नाम की जगह से आगे उसका चलना मुश्किल

हो जाता था। इस प्रकार झराणी की मुनि की पत्नी बनने की तमन्ना पूरी न हुई।

ठीक इसी प्रकार बूढ़ी नागिन भी शियाना पर आसक्त हो गई। सराहन गांव और सगौका गांव के बीच की धार पर एक झील के किनारे आ कर बूढ़ी नागिन शियाना की पत्नी बनने के उपाय ढूंढ रही थी। जब मुनिवर को इसके बारे में पता चला तो उन्होंने सराहन से अपना बरछा मारा और झील को सदा के लिए सुखा दिया। डर के मारे और अपनी शक्ति के न चलने पर नागिन वहां से भाग खड़ी हुई और जलोड़ी के पास सरसेउ झील के किनारे बस गई। बाद में इस बूढ़ी नागिन का एक बेटा 'रिआसी नाग' सराहन के सामने झलेहर गांव में आकर बस गया। आज भी झलेहर गांव में रिआसी नाग की पूजा की जाती है।

दिन बीतते गए। मुनिवर की उमर बढ़ती गई। एक दिन आया और ऋषि शियाना सदा के लिए अन्तर्धान हो गए। फिर गांव वालों ने ऋषि शियाना की मूर्ति बनवाई और रथ पर सजा कर देवता के रूप में पूजना शुरू किया। इस सराहनी देवता की मूर्ति बनाने में मूर्तिकार लुहार को जितनी कड़ी मेहनत करनी पड़ी शायद ही कोई कर सकता हो। अपने घर से लेकर उसने छः जगह पर शान्त वातावरण में देव-मोहरे को बनाने की असफल कोशिशें कीं। अन्त में कई महीनों की मेहनत के बाद सांतवी जगह 'बैखली डुआर' में जब मूर्ति बनी तो ऐसी बनी जो कि मुनिवर से बिल्कुल मिलती थी। इतनी सुन्दर मूर्ति शायद ही कलाकार कभी बना पाया हो। कहा जाता है कि मूर्तिकार इस मूर्ति को बनाते ही अन्धा हो गया। शायद देवता को यह मंजूर न था कि इस मूर्ति के समान कोई और मूर्ति दोबारा बने। रथ पर लगी इस मूर्ति के गाल पर अभी भी बरछे (भाला) का निशान है जो कि ढराई नाग के साथ युद्ध के दौरान ऋषि को लगा था।

सराहनी देवते का मोहरा सज-धज कर रथ पर सजाया गया। यह सब काम पहली बैशाख के दिन पूरा हुआ। तभी से सराहन गांव में हर साल पहली बैशाख को एक बहुत बड़ा मेला लगता है। साल का यह वह दिन है जिस दिन लोग देवता को अपनी सुख समृद्धि के लिए पूजते हैं और उस दिन तक पिछले साल में देवता ने जो कुछ उन्हें दिया उसका धन्यवाद करते हैं। अपने और अपने गांव को उन धारों के राक्षसों और जोगणियों से बचाने के लिए ये लोग तब से आज तक मुनिवर का वही तरीका अपनाते हैं, जिसमें कि उन्हें राक्षसों को अश्लील वाक्य सुनाने पड़े थे। हर वर्ष पहली बैशाख को इस मेले में ये अश्लील गाने लोगों के लिए अनिवार्य से हो गये हैं, अन्यथा देवता भी नाराज रहता है और उसको मन्दिर से बाहर निकालना भी मुश्किल हो जाता है।

सराहनी देवता की मूर्ति और रथ की स्थापना के कुछ सालों के बाद की बात है कि इस गांव के एक किन्नौर खानदान का मर्द विशलेऊ जोत पर कंदलू बाहण जंगल में जड़ी-बूटियां खोदने गया हुआ था। ये लोग इस जड़ी (स्थानीय भाषा में लोग इसे धूप कहते हैं) का व्यापार किया करते थे। उस दिन बढाहड़ के नजदीक 'गलेहड़' गांव का एक आदमी भी धूप खोदने उधर पहुंचा हुआ

था। इस खुदाई के दौरान उस गलेहड़ के मर्द का कुदाल कहीं फंस गया। बड़ी मेहनत के बाद जब कुदाल उसने निकाला तो जो कुछ साथ में जमीन से निकला उसे देख थोड़ी देर तो वह स्वयं स्तब्ध रह गया। यह एक देवी का मोहरा था। उसकी चमक दमक देखकर उसकी अपनी आंखें चुंधिया गईं। पर कुदाल की मार से उसके एक तरफ का वक्ष (स्तन) टूट चुका था। पास में सराहन के किन्नौरे को देख उत्सुकता में उसने उसे पास बुलाकर वह मोहरा दिखाया। वह किन्नौरा उस सुन्दर मूर्ति को देखता ही रह गया। कुछ देर ध्यान-मग्न उसे देख लेने के बाद उसके मन में पाप जाग पड़ा। उसने बहाने से देखने के लिए उससे वह मूर्ति अपने पास मांगी और हाथ में लेते ही वह अपने गांव सराहन की तरफ भागा। गलेहड़ का आदमी कुछ देर तो यह सब कुछ समझ न सका और जब उसे लगा कि उसे ठग लिया गया है तो वह अपनी पाई हुई उस मूर्ति को वापिस छीनने के लिए उसके पीछे भागा। बागा स्थान से कुछ ऊपर एक बहुत बड़ा पत्थर है, वहां पहुंचने तक वह उस किन्नौरे को न पकड़ सका। सब कुछ अपने हाथ से जाते देखकर गलेहड़ पुरुष ने दिल तोड़ दिया और अन्त में सुलह करने की सोची। उस पत्थर पर खड़ा होकर उसने किन्नौरे को आवाज लगाई और उससे बोला, 'अरे भाई! ठीक है, आप इस मूर्ति को अब अपने गांव तो ले ही जा रहे हो, चलो ऐसा रहा कि मेरी यह कन्या 'जाई' रही और तेरी यह बन गई 'आई'।' (अर्थात गलेहड़ में इस लड़की का मायका रहा और सराहन में ससुराल)। इस बात पर उनकी सुलह हो गई और वह किन्नौरा उस मोहरे को गांव ले आया। इस बड़े पत्थर को आज भी लोग 'देवी' का थान कहते हैं।

इतनी सुन्दर मूर्ति उस खान दान ने शायद पहले कभी न देखी थी। कुछ दिनों बाद किन्नौर परिवार के बुजुर्गों के दिल में एक बात आई। उन्होंने सोचा क्यों न इसे सराहनी देवते के साथ सजाया जाए। इस सोच के साथ ही उसने देवता के सभी कर्मियों से सलाह मशवरा किया। जब सबने उस सुन्दर मूर्ति को देखा तो वे भी उस पर मोहित हो गये। सब इस बात के लिए राजी हो गये। देवता से भी इस बात के लिए पूछा गया। उसके हां करने पर उन लोगों ने उस मोहरे को सराहनी देवते के रथ पर सजा दिया। लोगों के अनुसार यह एक प्रकार का विवाह था। अब वह देवी सराहनी देवता की पत्नी मानी जाने लगी। यह देवी का मोहरा उस रथ पर सामने के भाग में सजाया गया है। रथ का वह हिस्सा जहां से नीचे रंग-बिरंगे वस्त्र लटकाए जाते हैं, उस भाग में इस मोहरे को सजाया गया, अर्थात यह मोहरा शेष सभी मोहरों से नीचे है। इस मोहरे का गर्दन से नीचे का भाग लटकाए गए वस्त्रों (इन रंग-बिरगें वस्त्रों को देवता के बागे कहा जाता है) के बीच में छुपा हुआ है। इसलिए मोहरे का एक वक्ष (स्तन) वाला हिस्सा किसी को नहीं दिखाया जाता, क्योंकि भारतीय नारी में लाज धर्म की प्रथा, जिसमें कि वह सदा अपना स्तन ढका रखती है, कई सदियों से चली आ रही है और जुग-जुग तक कायम रहेगी। तब से इसे भी एक देवी के रूप में पूजा जाता है और इसे 'बर्म-चूड़ी' देवी से पुकारा जाता है।

तब से गांव के सभी प्रकार के सुख सम्मान के लिए और आने वाले अच्छे समय के लिए

सराहनी देवता को पूजा जाता है और गांव वासियों पर आए दुःख और संकटों से निपटारे के लिए देवी ''बर्म-चूड़ी' को पूजा जाता है। हालांकि दोनों एक ही रथ पर विराज मान है इसलिए दोनों प्रकार के काम पर पूरा रथ निकाला जाता है और सामान्य रूप में हर प्रथा के दौरान दोनों की पूजा जायज है। क्योंकि बूढ़ी नागिन शियाना ऋषि पर आसक्त थी और उसकी पत्नी बनना चाहती थी, इसलिए उसका लड़का झलेहर गांव का रिआसी नाग देवी 'बर्म-चूड़ी' को अपनी मासी मानता है।

एक वक्त सराहन गांव में बड़ी मुसीबत आई। गांव से ऊपर जंगल में 'कुही' नाम का एक पक्षी आ गया। यह चील की तरह एक भयानक दिखने वाला नरभक्षी पक्षी था। गांव से जागा की तरफ अकेले जाते मनुष्य को देखकर वह ऊंचाई से एक तेज उड़ान भरता था और गर्दन पर मार करते हुए मनुष्य का सिर काट कर ले जाया करता था। गांव में कूही की वजह से हा-हा कार मच गया था। लोगों का घर से अकेले निकलना मुश्किल हो गया। तब सब ने मिलकर देवी बर्म-चूड़ी की पूजा की। लोगों ने देवी को मेला मनाने का वचन भी दिया। तब देवी बर्म-चूड़ी और रिआसी नाग दोनों ने मिलकर 'कुही' नरभक्षी पक्षी को मार भगाया। तब से दो बैशाख को देवी और रिआसी नाग के प्रति सराहन गांव में एक बड़ा मेला लगता है। दरअसल पहली बैशाख का सराहनी देवते का मेला और दो बैशाख का मेला सामूहिक रूप से मनाया जाता है।

पहली बैशाख साज़े के दिन सुबह से ही देवते का पुजारी देवते के मोहरे और अन्य गहनों की सफाई करता है। उस दौरान लोग भी अपने घरों की सफाई इत्यादि कर लेते हैं। दोपहर तक देवते के रथ को सजा कर तैयार कर दिया जाता है। फिर भी बाजे-गाजों की धुन के साथ देवता को मन्दिर के प्रांगण में निकाला जाता है। वहां मन्दिर के प्रांगण में देवते का गूर 'मिटता' है, अर्थात् देवते की आत्मा गूर (चेला) में प्रवेश करती है। इस दौरान गूर गांव के लोगों के सामूहिक कष्ट के बारे में सुनता है और उनको निपटारे के लिए तरीके बताता है। इस दौरान कोई आदमी अपने अकेले घरेलू कष्टों का गूर से पूछताछ नहीं कर सकता। इसमें गूर आने वाले मौसम, सूखा, आकाल, बीमारी, आपत्ति, अच्छी या बुरी फसल आदि के बारे में सूचना देता है। लोग सुख-समृद्धि के लिए देवता से मांग करते हैं। कुछ देर पश्चात् मंदिर के आंगन से देवता मन्दिर के चारों तरफ परिक्रमा करता है। उस दौरान आस-पास की गलियों में भी देवता जाता है और दुष्ट आत्माओं को गांव से भगा देता है। फिर देवता 'झीटो खेच' ले जाया जाता है जहां पर की उसकी पूजा की जाती है।

पूजा की समाप्ति पर देवता का रथ एक बार दोबारा मन्दिर में लाया जाता है। वहां रथ एक बार फिर से मन्दिर को प्रणाम करता हुआ आंगन से बाहिर आता है। इस दौरान अब गूर के मिटने और अपने ज़ोर दिखाने का कोई चक्कर नहीं होता। अब देवता के रथ को आगे चलाने का पूरा हाथ साज का होता है। कदम-कदम शहनाई वादक अपनी धुन के ज़ोर पर उसे आगे

सरकाता है। जगह-जगह पर रथ उठाने वाले के क़दम अपने आप रुक जाते हैं और शहनाई वादक अपनी पूरी कला उंडेलते हुए देवता को गांव की गलियों से गांव के पश्चिम किनारे पर निकाल पाता है। गांव के इस कोने से लेकर शुरु होता है उन अश्लील शब्दों का उच्चारण जो कि इस मेले पर खास तौर पर बोले जाते हैं। जैसा कि शियाना ऋषि ने राक्षसों को गांव से दूर रखने के लिए इस प्रकार के अपशब्द बोले थे ठीक उसी आस्था के अनुकूल लोग इन गानों को बोलते हैं। मर्दों और देवता के रथ की टोली से करीब ५०-६० मीटर ऊपर के खेतों से औरतों की टोली भी साथ-साथ चलती है। औरतों की तरफ से भी उन्हीं वाक्यों का आख्यान होता है। बीच में कुछ अश्लील वाक्य मेले में आए मुख्य अतिथियों पर भी उडेल दिए जाते हैं। शायद यह सब कुछ देवता के लिए जरूरी है। यदि यह अश्लील शब्द न बोले जायें तो लोगों की आस्था है कि या तो देवता आगे चलता ही नहीं या फिर आस-पास के भूत-प्रेत राक्षस अपने दुष्ट प्रभाव से लोगों पर कष्ट ढाते हैं। कहा जाता है कि गांव के कुछ लोगों ने एक बार यह प्रथा समाप्त करने की कोशिश की थी तो उसी दिन मेले में दो आदमियों को इस प्रकार के दौरे पड़े जो किसी भी रूप में ठीक नहीं हुए जब तक कि पुनः वे अश्लील गाने न गाये गए। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि गांव की गलियों से बाहर आती बार जब जगह-जगह देवता रुकता है तो शायद शहनाई वादक भी शहनाई में किसी प्रकार के अश्लील गानों का साज निकालते हैं।

बागा के मन्दिर से कुछ दूरी पर इस प्रकार के ये गान बन्द कर दिये जाते हैं। देवता इस मन्दिर के चारों तरफ एक परिक्रमा करता है और तब मन्दिर के सामने बने एक चबूतरे पर देवते के रथ को रख दिया जाता है। फिर गांव के कुछ लोग जंगल में जाकर एक छोटी सी पड़ेई (ध्वज) लाते हैं जो कि उस मन्दिर के नज़दीक एक खास जगह पर गाड़ दी जाती है। इस इलाके की धौज़ एक तरह से पूरा कटा हुआ पेड़ होता है जिसकी खाल उखाड़ दी जाती है और ऊपर के हिस्से में टहनियां और नोकदार पत्ते ऐसे ही साथ लगे रहने देते है। इसके साथ ही उस दिन का मेला समाप्त हो जाता है। उस दिन देवता वहीं बाग के अपने मन्दिर में रहता है। कहा जाता है कि इस मन्दिर की जगह पर ही उस झराणी का घर था जो कि शियाना ऋषि पर मोहित थी और अन्त तक वह कंवारी ही रही और मर गयी। मरती बार उसने मुनिवर से साल में एक बार वहां आने का वायदा ले लिया था, इसलिए यह पहली बैशाख की रात हर साल सराहनी देवता इस जगह गुजारताहै और इस पड़ेई के ज़रीये अगले पूरे साल के लिए अपनी निशानी वहां छोड़ जाता है।

यह मंदिर जिसे झराणी की याद कहा जाता है शायद हमारे प्रदेश का एक अत्यन्त भिन्न प्रकार का मन्दिर है। इस मंदिर का भवन शेष हिमाचल प्रदेश के देवी-देवताओं के डेहरे की तरह है। डेहरा अर्थात् दोवरा देवताओं का ऐसा रहने का मन्दिर है जहां देवता अस्थाई रूप से एक या दो दिन के लिए रहने आता हो। ये डेहरे ज्यादातर एक मंजिल के छोटे से घर होते हैं,

जिसके आधे हिस्से में एक छोटा सा कमरा होता है और शेष आगे का आधा हिस्सा खुला बरामदा होता है। चारों तरफ एक तंग बरामदा भी होता है। ठीक इसी प्रकार का यह झ़राणी का घर है। यह सराहनी देवते के लिए एक दिन का शरण स्थल (दोघरा) है। परन्तु इस डेहरे की दीवार पर जो लकड़ी पर मूर्तिकला है वही इसकी विशिष्टता है। जिस प्रकार झ़राणी ने शिआनाऋषि को मोहित करने के लिए कई तरीके अपनाए थे, उनमें से अपने घर को ऐसा रूप देना भी शायद उसका एक तरीका था। इस चित्रकारी में नग्न स्त्री का काष्ठ-चित्र, जानवरों का आलाप, सम्भोग का दृष्य, मानुष-लिंगों का दिखाया जाना शामिल है। इसीलिए अन्य देवताओं के दो घरों की प्रथा से यह भिन्न है। सराहनी देवता उस रात इस डेहरे में न रह कर सामने वाले चबूतरे पर बैठता है और रात वहीं काटता है।

अगले दिन दो बैशाख को आधे गांव के लोग सुबह ही जंगल जाते हैं और गांव के मन्दिर के बाहिर गाड़ने के लिए पड़ेई-धौज़ (ध्वजा) का इन्तज़ाम करते हैं। यह धौज़ पिछले दिन वाली धौज के मुकाबले काफी ज्यादा लम्बी होती है। सुबह के खाने से पहले-पहले देवता वापिस गांव में चला जाता है और वहां 'झीटो-खेच' के बीचों-बीच बने चबूतरे पर विराजमान हो जाता है। वहां पर लोग अपने-अपने दुःखों के लिए देवता से पूछ डालते हैं और वरदान लेते हैं। ऐसा वरदान देवता का गूर शेष (चावल के दाने 'अक्षत') देकर प्रदान करता है। सुबह के खाने तक लोग मुख्य धौज़ को बागा के मन्दिर के पास लाकर रख देते हैं। धौज़ को वहीं छोड़ कर लोग अप ने घरों को खाना खाने चले जाते हैं। इसी दौरान गांव के किन्नौरे खानदान के सभी लोग बागा के मन्दिर के पास अपने 'आई' अर्थात् देवी बर्म-चूड़ी का एक रथ बनाते हैं। यह रथ जंगली घास और लकड़ियों का बनाया जाता है। इस देवी का पुजारी इसी खानदान में से एक होता है। वह गांव में जाकर सराहनी देवता का चांदी वाला छत्र मांग कर लाता है और इस घास की बनी देवी के रथ के ऊपर सजा देता है तब सराहनी देवता के रथ पर सोने का छत्र सजाया जाता है।

खाना खाने के बाद शेष गांव के लोग (आधा गांव के लोग सुबह जंगल से पड़ेई काट कर लाए थे) बागा के मन्दिर के पास रखी पड़ेई उठाने के लिए आते हैं। किन्नौरे खानदान के लोग अपनी 'आई' (देवी) का रथ अपने कन्धों पर उठाते हैं और गांव की तरफ चलते हैं। पड़ेई उठाने का जलूस और देवी का वह घास का बना रथ साथ-साथ चलते हैं। गांव और बागा के ठीक बीचों-बीच एक बड़ा पत्थर है जहां पर झ़लेहर-डलेहर की तरफ से आने वाला रास्ता इस रास्ते से मिलता है। यहां बैठकर देवी और पड़ेई, रिआसी नाग का इन्तजार करते हैं। रिआसी नाग आकर अपनी मासी देवी बर्म-चूड़ी से गले मिलता है। उसके बाद दोनों (देवी और नाग का रथ) को गांव की तरफ ले जाया जाता है।

झीटो खेच के नीचे गांव के एक किनारे खेत में आकर देवी का रथ वहीं रुक जाता है, जबकि रिआसी नाग और पड़ेई को लोग सराहनी-देवता के मन्दिर तक ले जाते हैं। धौज़ को

फिलहाल वहां मन्दिर के पास ही रख दिया जाता हैं। रिआसी नाग का रथ मन्दिर का चक्कर लगाता है। फिर वहां से आकर झीटो खेच में चबूतरे पर रखे रथ को नमस्कार करता है। दोनों देवता एक दूसरे से गले मिलते हैं। वहां से दोनों (सराहनी देवता और रिआसी नाग) अब देवी को लाने जाते हैं। उस खेत में दोनों देवी के साथ गले मिलते हैं। फिर तीनों मिल कर दोबारा झीटो खेच वापिस आते हैं। सबसे आगे देवी का रथ चलता है।

अब तीनों देवताओं के रथ आगे-आगे चलते हैं और देवता के मन्दिर पहुंचते हैं। तीनों देवता मन्दिर के परांगण में चले जाते हैं। पिछले साल की खड़ी की गई पड़ेई को जमीन पर के गढ़े से ढीला किया जाता है। जिस तरफ को वह धौज गिराई जानी हो उस तरफ को देवी का रथ रखा जाता है और बाजे-गाजे के साथ पड़ेई को उस स्थान से निकाल दिया जाता है। उसके बाद इस साल की लाई हुई नई पड़ेई को गाढ़ दिया जाता है। इस ध्वजारोहण के पश्चात् तीनों देवता झीटो-खेच की तरफ मेले के अगले कार्यक्रम के लिये चले जाते हैं।

जिस दौरान मिलन की इन घड़ियों में तीनों देवी देवता व्यस्त होते हैं, उसी समय सारे गांव से सुहागिन औरतें पूजा का सामान लेकर झीटो खेच पहुंच जाती हैं। पूजा के लिए उनके एक हाथ में धूप और आग की चिंगारियों से भरा दंगियारा (कुल्लू में, खास किस्म का, पूजा के लिए धूप जलाने को बनाया गया यन्त्र) होता है और दूसरे में चावल के दानों से भरी थाली होती है। इन सब औरतों ने रंग-बिरंगे पट्टू पहने होते हैं जिनमें कि वे कमर पर गाची नहीं बांधती। यह पट्टू इस प्रकार कन्धों से बुभणी के सहारे नीचे तक लटका होता है और इसके नीचे वे टांगों के वस्त्र नहीं पहनतीं और नंगे पांव होती हैं। तीनों रथ के पहुंचने पर पूजा का क्रम शुरू होता है। सबसे आगे देवी का रथ, उसके पीछे रिआसी नाग का रथ और सबसे पीछे सराहनी देवते का रथ क्रमशः एक-एक औरत के पास जाते हैं और हर औरत बारी-बारी से अपने स्थान पर खड़े होकर धूप से पूजा करती है और चावल के दाने फैंकने का आह्वान करती है। सब औरतों के सामने देवी-देवता रुकते हैं और उनकी पूजा को कबूल करते हैं। देवी-देवता की इस प्रकार की पूजा का दृश्य शायद ही कहीं और मिलता हो। सज-धज कर आई औरतें, देवताओं के सजे हुए रथ और चारों ओर पूरे वातावरण में जलते धूप का धूआं और उसकी सुगन्धित महक देखने वालों को कुछ देर के लिए मुग्ध कर देती है।

पूजा के एकदम बाद वे सब औरतें अपनी पूजा का सामान एक तरफ रख देती हैं। सबसे आगे देवता और देवी के पुजारी और उनके पीछे वे सारी औरतें एक गोल दायरे में वाद्य संगीत के साथ नृत्य करती हैं। इस नाच के समय कोई भी पुरुष पंक्ति में लग कर नाच नहीं सकता। इस नाच के साथ कोई खास किस्म का गाना नहीं गाया जाता। ये औरतें झीटो खेच के पूरे अढ़ाई चक्कर लगाती हैं और उसके बाद अपने घरों को भाग जाती हैं। अब औरतें अपना पूजा का रूप बदल कर मेले के रंग बिरंगे कपड़े और गहनें पहनने चली जाती हैं। इस अढ़ाई चक्कर के नृत्य के एक दम बाद गांव के सब लोग कतार लगाकर उस मैदान में देवते के चबूतरे के चारों तरफ नाचते हैं। इस समय सबसे आगे के तीन पुरुषों के पीठ के पीछे तीन औरतें खड़ी होती हैं, जो कि अपने सिर पर कपड़ा रख कर अपना चेहरा ढक लेती हैं। ये तीनों भी उन लोगों के साथ-साथ उस एक चक्कर में नाचती हैं। यह केवल एक पूरा चक्कर लगता है और इसमें

वाद्य-संगीत के साथ अश्लील गायन गाया जाता है जो कि कभी भी स्पष्ट नहीं होता। असल में तीनों देवताओं के बाजे-गाजे के बीच इन गीतों का स्पष्ट पता नहीं चल पाता। इस एक चक्कर के नृत्य के बाद सब नर्तक तितर-बितर हो जाते हैं।

सराहन गांव से दूर के कई देवता भी इस मेले में आने के इच्छुक होते हैं। कुछ को निमन्त्रण देकर बुलाया जाता है और कुछ सराहनी देवता से आज्ञा लेकर यहां आते हैं। पर इस मेले के ऊपरलिखित सभी प्रकार के क्रमशः आयोजन होने के दौरान इन सभी मेहमानों को आने की स्वीकृति नहीं होती। इस दौरान ये सभी देवता सराहनी देवता के मंदिर के अंदर ही रहते हैं। उसके पश्चात् अन्य मेलों की तरह मेला लगता है। जिसमें खाना-पीना, खरीददारी इत्यादि सब कुछ होता है। लोग चोला-कलगी लगाकर नाचते हैं। इस दौरान मेहमान देवता भी बाहिर आकर उस मैदान के बीचों-बीच चबूतरे पर लाए जाते हैं और लोगों के दर्शन के लिए रखे जाते हैं। लोग शाम तक नाचते रहते हैं और कुछ अधिक शौकीन लोग सारी रात भी नाचने में व्यस्त रहते हैं।

जिला अस्पताल, कुल्लू, (हि० प्र०)

अन्द्रेटा (कांगड़ा घाटी) में नोराह रिचड्र्स की कर्मस्थली 'वुडलैण्ड्स' में (बाएं से) :इन्द्रजीत, अमृता प्रीतम, डॉ० एम. एस रंधावा और किशोरी लाल वैद्य।
(विवरण पृ० नं० 36 से 41 पर)

पहाड़ी चित्रकला पारखी

स्मृतियों के साये में डॉ० एम. एस. रंधावा

○ किशोरी लाल वैद्य

मैं जिन दिनों पहाड़ी चित्रकला पर कार्य कर रहा था, उन दिनों किन्हीं मित्रों ने सुझाव दिया था, कि मैं डॉ० एम. एस. रंधावा से भी सम्पर्क करूं लेकिन पुस्तक प्रकाशित होने से पहले मैं तद्‌विषयक किसी सम्वाद के लिए मन से ही तैयार नहीं था। सन् 1968 में मेरी पुस्तक प्रकाशित हो गई थी। उसके बाद मैंने डॉ० रामकृष्णदास, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० आनन्द कृष्ण, डॉ० निहाररंजन रे. प्रो० भावेश सान्याल, डॉ० स्वेतोस्लाव रोरिक जैसे भारतीय कला-मर्मज्ञों के हाथों में कुछ पत्राचार के बाद अपनी पुस्तक रख दी थी और इन सभी से मुझे उत्साह वर्धक प्रतिक्रियाएं प्राप्त भी हुईं लेकिन डॉ० रंधावा से सम्पर्क के किन्हीं विशेष क्षणों की मुझे एक अर्से तक प्रतीक्षा बनी रही। श्रीमती नोराह रिचर्ड्स और सरदार शोभा सिंह भी चाहते थे कि मैं डॉ० रंधावा से सम्पर्क बनाऊं लेकिन चूंकि मेरा शोध-कार्य हिन्दी में था, अतः मैं सोचता था कि डॉ० रंधावा मेरे कार्य से अच्छी तरह परिचित नहीं हो पायेंगे। यद्यपि मैंने डॉ० रंधावा की दो पुस्तकें एक कुल्लू पर और दूसरी कांगड़ा पर प्रकाशित हुई देखी थी तथापि मेरे मन में हिन्दी में उनकी रुचि को तो स्वीकार किया लेकिन उनकी पैठ को नहीं। डॉ० स्वतोस्लाव भी हिन्दी में पुस्तक पढ़ सकते हों, ऐसा मैं नहीं सोचता था लेकिन उनकी धर्म पत्नी व हिन्दी सिने जगत की विख्यात अभिनेत्री श्रीमती देविका रानी मेरे हिन्दी व अंग्रेज़ी लेखन से किसी हद तक परिचित थीं। श्रीमती देविका रानी डॉ० स्वेतोस्लाव की निजी सचिव भी हैं और चूंकि मैंने अपनी उपर्युक्त पुस्तक महर्षि निकोलस रोरिक की स्मृति में समर्पित कर रखी थी, अतः डॉ० स्वेतोस्लाव रोरिक और श्रीमती देविका रानी दोनों ही हिमालय के महान् चितेरे के साथ मेरे भावनात्मक सम्बन्ध को बखूबी समझते थे। लेकिन डॉ० रंधावा के साथ इस पुस्तक के माध्यम से मैं कैसे अपना सम्बन्ध जोड़ूं, यह मैं तब तक समझ नहीं पाया था। लेकिन ज्यों-ज्यों पहाड़ी चित्रकला पर मैं डॉ० रंधावा के प्रकाशन और लेख देखता, मेरे मन में उनसे किसी सार्थक सम्वाद के लिए उत्कण्ठा और बढ़ जाती। एक बात मेरे मन में और थी कि इस कृषि-वैज्ञानिक, प्रशासक और कलाविद को मैं उसके अपने परिवेश अर्थात् खरड़ स्थित गार्डन हाऊस में ही देखना चाहता था। पर मन की वह इच्छा तो मन में ही रह गई।

एक बार पहली अप्रैल 1972 को मैं सरदार शोभासिंह के निमन्त्रण पर अन्द्रेटा पहुंचा था। वहां उन दिनों अमृता प्रीतम और इन्द्रजीत आए हुए थे। डॉ० रंधावा भी आने वाले थे। दारजी का जो स्टूडियो था, वही उनका शयन कक्ष भी था। अक्सर मिलने-जुलने वाले भी स्टूडियो में ही चले आते थे और वहीं दार जी से उनकी बातचीत भी हो जाती थी। आगन्तुकों की इस चैहल-पैहल के बावजूद स्टूडियो की सफाई और सज्जा मे कोई विकृति नहीं आ पाती थी। वास्तव में दार जी को उनके स्टूडियो में देखने का एक अपना आकर्षण था। इसी स्टूडियो में एक अर्से तक डॉ० रंधावा की दार जी द्वारा प्लास्टर आफ़ पेरिस में निर्मित आवक्ष प्रतिमा भी देखी जा सकती थी। यह बड़ी ही सजीव प्रतिमा है और जिन भी लोगों ने डॉ० रंधावा को उनके जीवन-काल में देखा है, वे इसमें प्रतिबिम्बित उनकी रूपश्री की छवि को सराहे बिना नहीं रह सकते। अब कुछ अर्से से यह प्रतिमा निवास की बाहरी दीवार पर आ लगी है जिससे बाहर सड़क पर से गुजरने वाले व्यक्ति के लिए भी इसके दर्शन करने सुलभ हो गये हैं।

दारजी के निवास के बाहर डॉ० रंधावा की कार रुकी और उसमें से उतर कर वे सीधे स्टूडियो में गये जहां दार जी अपने पलंग पर अध-लेटे से थे। डॉ० रंधावा के साथ ही दो अन्य व्यक्तियों ने भी प्रवेश किया। अभी डॉ० रंधावा कुर्सी पर बिराजे भी नहीं थे कि उनका ध्यान कमरे के भीतर एक-दो मक्खियों की ओर गया जो उन्हें असह्य मालूम दिया। इस सम्बन्ध में बाद में जब बीबी गुरुचरण जी से बात छिड़ी तो उन्होंने बताया कि डॉ० रंधावा बैठने से पहले उंगली छू कर स्थान की परख कर लेते हैं कि वहां लापरवाही से कोई धूल तो नहीं है। वे सफाई के सम्बन्ध में बेहद संवेदनशील हैं।

दार जी से इतमिनान से डॉ० रंधावा की बातचीत होती रही, जिसमें उन्होने उस प्रसंग को भी याद किया जब देश-विभाजन पर दारजी को अपना सब कुछ पीछे छोड़ एक दम खाली हाथ निकलना पड़ा था और बाद में उन्होंने जो चित्र तैयार किये थे, उनकी प्रदर्शनी डॉ० रंधावा द्वारा ही दिल्ली में आयोजित की गई थी। उस समय डॉ० रंधावा दिल्ली के उपायुक्त थे और शरणार्थियों के लिये शिविरों का प्रबन्ध करने और उन्हें राहत पहुंचाने की एक बड़ी जिम्मेदारी उनके कन्धों पर आ पड़ी थी। दार जी का इससे पहले भी डॉ० रंधावा से परिचय था चूंकि जब वे कालेज में विज्ञान का अध्ययन-अनुसंधान कर रहे थे तब दार जी ने लाहौर में उनके लिए कुछ माडल बनाये थे।

बात-बात में दार जी ने डॉ० रंधावा से मेरा परिचय करवाया और उन्हें मेरी उन्हीं दिनों प्रकाशित पुस्तक 'पहाड़ी चित्रकला' भी दिखाई। पुस्तक हाथ में लेते ही उन्होंने पूछा, "क्या आपने इसमें सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची दी है।" इस पर मैंने उन्हें उन सहायक ग्रन्थों की विस्तृत सूची दिखा दी जिन्हें मैं अपनी पुस्तक लिखने के दौरान देख पाया था। डॉ० रंधावा ने तुरन्त ही दूसरा प्रश्न किया, "क्या इसमें मेरी पुस्तकों का उल्लेख भी हुआ है ?" मैंने उन्हें ऐसी आठ

पुस्तकों के नाम गिनाते हुए कहा कि उस समय जो भी पहाड़ी चित्रकला सम्बन्धी आपकी पुस्तकें मेरे अवलोकनार्थ उपलब्ध हो सकी थीं, उन्हें मैंने सन्दर्भ-सूची में सम्मिलित कर लिया था लेकिन उन पुस्तकों को मुझे छोड़ना पड़ा है जिन्हें मैं देख ही नहीं पाया था। तब उन्होंने मुझे उन पुस्तकों के नाम गिनाए जो उस सूची में शामिल नहीं थे।

मैंने डॉ० रंधावा को उनकी वे पंक्तियां भी दिखाई जिन्हें मैंने सार्थक समझ कर ससन्दर्भ उद्धृत किया था। इसके बाद मैंने उन्हें पुस्तक में से अध्यायों के शीर्षक दिखाये। डॉ० रंधावा ने प्रकाशित चित्रों को भी बड़े गौर से देखा। उनमें से अधिकांश चित्र पहली बार प्रकाशित हुए थे। यह सब देखने के बाद उन्होंने मुझे बधाई देते हुए कहा, "मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि आपने यह कार्य किया है।"

पुस्तक के अतिरिक्त मैंने उन्हें 'आजकल' (नवम्बर 1966 अंक) में मण्डी भित्तिचित्रों पर प्रकाशित अपने लेख का ऑफप्रिंट भी दिखाया। उसे देखकर उन्होंने कहा, "मुझे इस लेख का अंग्रेजी अनुवाद भेजो। मैं उसे "रूप लेखा" में प्रकाशित करूंगा।

नोराह रिचर्ड्स के सम्बन्ध में बात चली तो दार जी ने डॉ० रंधावा को मेरे उनसे स्नेह सम्बन्धों का परिचय दिया और यह बताया कि मैं उन पर पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखता रहा हूं। तब उन्होंने पूछा कि तुम कब से उन्हें जानते हो? मैंने कहा कि मैं सबसे पहले उन्हें 28 नवम्बर 1964 को मिला था और उस मुलाकात पर आधारित अपने दो लेख मैंने कलकत्ता से प्रकाशित होने वाली अंग्रेजी की कला-पत्रिका 'रीदम' (पूजा-विशेषांक 1967) और 'ज्ञानोदय' (अक्तूबर 1966) में प्रकाशित किये थे। मैंने जब 'रीदम' की वह प्रति उन्हें दिखाई तो वे काफी देर तक उसे हाथ में पकड़े रहे और फिर उन्होंने उसे वहीं बैठे-बैठे पढ़ भी लिया। नोराह रिचर्ड्स पर बातचीत करते हुए मैंने कहा कि मैं उनकी पुस्तक, 'कंट्री लाइफ' (1970) का हिन्दी अनुवाद करना चाहता हूं पर जाने प्रकाशक उसकी अनुमति देगा या नहीं। इस पर डॉ० रंधावा ने कहा, "आप यह काम अवश्य करो। शेष काम मेरे जिम्मे छोड़ दो।" डॉ० रंधावा की इस पुस्तक में विशेष रुचि रही थी। उन्होंने ही उसका प्राक्कथन भी लिखा था। उस समय वे पंजाब कृषि विश्वविद्यालय लुधियाना के उप-कुलपति थे।

मैं कुछ देर के बाद दार जी के स्टूडियो से बाहर निकल आया था ताकि दोनों को परस्पर बातचीत के लिए आवश्यक एकान्त मिल सके।

डॉ० रंधावा के साथ कुछ अन्य व्यक्ति भी थे। उन्हें श्रीमती गुरुचरण कौर ने चाय परोसी और मुझे बताया कि डॉ० रंधावा किसी के यहां कुछ खाते-पीते नहीं, फिर भी पूछ लेती हूं। डॉ० रंधावा ने स्वीकार किया कि वे एक कप चाय लेंगे। मुझे डॉ० रंधावा द्वारा दार जी के सान्निध्य में यह नियम भंग करना भला लगा।

वास्तव में डॉ० रंधावा और अमृता प्रीतम इस बार दार जी से एक विशेष उद्देश्य को लेकर मिलने आये थे। अमृता प्रीतम दार जी पर एक वृत्त-चित्र बनाना चाहती थीं और उन्हें यह भी ख्याल था कि डॉ० रंधावा इस कार्य में सहायक हो सकते हैं। चूंकि दार जी के साथ मेरे भी स्नेह-सम्बन्ध थे, अतः वे चाहते थे कि मैं भी इस अवसर पर उपस्थित रहूं। इसी आशय का पत्र पाकर मैं इस बार अन्द्रेटा गया था।

डॉ० रंधावा के इस निर्देश पर उनके साथ आए श्री विर्क ने इस आशय के एक पत्र का प्रारूप तैयार किया कि सरदार शोभा सिंह का एक मित्र वर्ग उन पर एक वृत्तचित्र तैयार करना चाहता है और वे अपने अनुदान से इस योजना को मूर्तरूप देने के लिए पहल करेगा। यहां यह लिखना असंगत नहीं होगा कि यह योजना बाद में किन्हीं कारणों से आगे नही बढ़ पाई। स्टूडियो से उठने के बाद डॉ० रंधावा ने दार जी की आर्ट गैलरी में प्रवेश किया और वहां एक-एक चित्र बड़े ध्यान से देखा और उन चित्रों पर थोड़ी-बहुत टीका-टिप्पणी भी करते रहे।

इसके बाद हम नोराह रिचर्ड्स के वुडलैण्ड्स को देखने चले गये। नोराह रिचर्ड्स का देहावसान हुए उस समय पूरा एक वर्ष हो गया था। अमृता प्रीतम और इन्द्रजीत भी साथ ही थे। सभी लोग नोराह को किन्हीं स्मृतियों के सहारे याद करते रहे। फिर भी उस परिवेश को उसके मूल रूप में सुरक्षित करने के प्रति भी उन्होंने अपना सरोकार व्यक्त किया। इस समय नोराह के दो सेवक प्रभु और सालि॰ भी सामने आ गये थे जिनका वह 'ट्रिब्यून' में लिखे अपने लेखों में कभी-कभार बड़ी रोचकता से ज़िक्र किया करती थीं। जब वुडलैण्ड्स में छायाकार सुरजीत सिंह डॉ० रंधावा का चित्र लेने लगे तो मैं जान-बूझ कर चुपचाप इधर-उधर हो गया था लेकिन चित्र के लिए तैयारी से पूर्व ही उन्होंने मुझे पुकार कर कहा, "वैद्य, इधर आओ।" मैंने छायाचित्र में सामिलित होने में थोड़ा संकोच करते हुए कहा, "श्रीमान, मैं आपके मध्य नहीं जच पाऊंगा"। उन्होंने अपनी बात पर बल देते हुए कहा, "तुम यहां बहुत अच्छी तरह जचते हो। आओ, यहां मेरे साथ बैठो।" इस आग्रह के साथ उन्होंने मुझे अपनी बाईं ओर बिठा लिया और उधर दायीं ओर बैठी थी अमृता प्रीतम और इन्द्रजीत।

डॉ० रंधावा जब वापिस जाने लगे तो मुझे विशेष रूप से अलग कर उन्होंने कहा, "मुझसे मिलते रहा करो। तुम्हें मुझ से सम्पर्क बनाए रखना होगा।"

पर्याप्त समय गुज़र गया था लेकिन मैं डॉ० रंधावा को 'मण्डी के भित्तिचित्र' वाले लेख का अंग्रेज़ी अनुवाद न भेज पाया। एक बार सर्दियों में मुझे एकान्त नसीब हुआ और मैंने इस विषय पर अंग्रेज़ी में एक स्वतंत्र लेख लिख डाला। मैंने उन्हें पत्र द्वारा सूचित किया कि मैंने वह लेख तैयार कर लिया है। इस पर उन्होंने मुझे उत्तर लिखा ;

"मुझे आपका पत्र दिनांक 30 अक्तूबर 1966 को मिला, पा कर प्रसन्नता हुई।

"मेरा सुझाव है कि आप मुझे मण्डी भित्तिचित्रों पर अपना लेख छायाचित्रों सहित ऑल इण्डिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफट्स सोसाइटी की पत्रिका 'रूपलेखा' में प्रकाशनार्थ भेज दें। हम आपको लेख तथा छायाचित्रों के लिए पारिश्रमिक भी देंगे। बड़ी बात यह है कि आपका लेख उन विद्वानों की नजर में भी आयेगा जो इस विषय में रुचि रखते हैं।

भवन्निष्ठ
एम० एस० रंधावा"

मैंने अपना लेख डॉ० रंधावा को नहीं भेजा बलिक सीधे 'रूप-लेखा' को ही प्रेषित कर दिया क्योंकि मैं डॉ० रंधावा के साथ अपने सीमित परिचय का लाभ लेख के प्रकाशन हेतु नहीं उठाना चाहता था। कुछ दिनों के उपरान्त मुझे आल इण्डिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी के मानद महा सचिव श्री बी० के० भौमिक से लेख की प्रकाशनार्थ स्वीकृति की सूचना मिली। यह लेख इस पत्रिका की वर्ष 1973 में जिल्द XLI (अंक 1-2) में प्रकाशित हुआ। मुझे इसके प्रकाशन पर अतीव प्रसन्नता हुई।

वर्ष 1977 में मेरी एक अंग्रेजी पुस्तक, 'द कल्चरल हेरिटेज ऑव द हिमालयाज़' का प्रकाशन हुआ। इस पुस्तक की ट्रिब्यून, इण्डियन एक्सप्रेस आदि पत्र-पत्रिकाओं में अधिकांशतः प्रशंसा ही की थी और हिमाचल प्रदेश की संस्कृति का सही चित्रण प्रस्तुत करने का लेखक को श्रेय दिया था। कुछ अर्सा बाद मुझे मेरे एक मित्र ने बतलाया कि पुस्तक की समीक्षा 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' में भी प्रकाशित हुई है और उसे डॉ० रंधावा ने लिखा है। मैं उस समीक्षा को देखने के लिए उत्सुक हो उठा। समीक्षा विस्तृत रूप से लिखी गई थी और भाषा की त्रुटियों की ओर संकेत किया गया था। डॉ० रंधावा जैसे विद्वान और कला-पारखी की दृष्टि में अपनी पुस्तक की समीक्षा देखने पर मुझे मन ही मन संतोष हुआ। इसलिए भी कि 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' ने बहुत ही सही व्यक्ति से पुस्तक की समीक्षा करवाई थी चूंकि हिमाचल की संस्कृति को उसके समुचे रूप में देखने-परखने के लिए डॉ० रंधावा के अतिरिक्त कोई अन्य अधिकारी भी हो सकता है, ऐसा मेरी जानकारी में नहीं था। दूसरी बात यह थी कि यह पुस्तक सीधे प्रकाशक से लेखक की जानकारी के बिना एक अधिकारी समीक्षक तक पहुंची थी, अतः समीक्षा में मात्र पुस्तक की त्रुटियों को अनदेखा करने और लेखक की पीठ थपथपाने की बात नहीं उठी। प्रकाशित समीक्षा पढ़ने के बाद मैंने डॉ० रंधावा का धन्यवाद प्रकट करते हुए उन्हें यह आश्वासन भी दिया कि मैं पुस्तक के अगले संस्करण में भाषा के प्रति अधिक सचेत रहूंगा। मेरे पत्र के उत्तर में डॉ० रंधावा ने अपने 28 सितम्बर 1978 के पत्र में मुझे लिखा कि मैं जब भी अपनी आगामी पुस्तक अंग्रेजी में लिखूं, उसे किसी योग्यताप्राप्त सम्पादक से सम्पादित करवा लूं। उन्होंने मुझे इस प्रकार के एक व्यक्ति का नाम और पता भी दिया।

मैंने मन ही मन डॉ० रंधावा के प्रति उनके द्वारा की गई समालोचना तथा सुझावों के प्रति कृतज्ञता अनुभव की, यद्यपि उसके बाद मुझे अभी तक अंग्रेजी में नई पुस्तक लिखना नसीब नहीं हुआ। फिर भी यह बराबर लगता रहा कि ऐसे ही आलोचक सही मार्ग-दर्शक होते हैं।

लोक सम्पर्क अधिकारी के रूप में काम करने के दौरान मेरे लेखन के कार्य को काफी धक्का पहुंचा था लेकिन फिर भी ज्यों-ज्यों अवसर मिलता, अपने 'लेखक' को जीवित रखने के लोभ पर संवरण कर पाना मेरे लिए कठिन होता। लोक सम्पर्क अधिकारी के नाते वर्ष 1981 में मुझे ग्रीष्मोत्सव पर एक स्मारिका के सम्पादन और प्रकाशन का कार्यभार उठाना पड़ा। यह कार्य मेरी रुचि-शुचि के अनुकूल था और इस कार्य को मैंने श्रम और लग्न से सफलतापूर्वक सम्पन्न कर डाला था। उसमें ज़िला सोलन से सम्बद्ध कला पर कुछ विशेष सामग्री जुटाने का प्रयत्न रहा। मैं स्वयं इस स्मारिका के प्रकाशन से पर्याप्त सन्तुष्ट था। मैं महसूस करता था कि डॉ० रंधावा की रुचि-शुचि के स्तर तक पहुंच पाना कठिन है लेकिन फिर भी सीमित साधन और समय को ध्यान में रखते हुए यह प्रयास बुरा नहीं था। अतः यही कुछ सोचकर स्मारिका की एक प्रति डॉ० रंधावा को भी भेज दी। उन्होंने 29 जुलाई 1981 को लिखे अपने पत्र में स्मारिका की पहुंच से अवगत कराते हुए लिखा, "ग्रीष्म उत्सव पर आपने जिस स्मारिका का प्रकाशन किया है उसे देख कर प्रसन्नता हुई। यह बड़े अच्छे ढंग से डिज़ाइन की गई है और इसमें कुछ अच्छे लेख प्रकाशित हुए हैं।" मुझे डॉ० रंधावा द्वारा प्रकट की गई सम्मति पा कर पुनः प्रसन्नता हुई।

इससे पूर्व एक घटना याद आ रही है। 29 नवम्बर 1980 को स. शोभा सिंह का 80-वां जन्म दिवस पड़ रहा था। मेरी अक्सर कोशिश रहती कि दार जी के जन्म-दिवस पर किसी न किसी पत्र-पत्रिका में उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर एक नया लेख प्रकाशित करूं। उस वर्ष मैंने अपने एक सुहृद मित्र राजेन्द्र सूद की सहायता से एक छोटी सी स्मारिका प्रकाशित की जिसमें 'द कल्चरल हेरिटेज ऑन द हिमालयाज़' में प्रकाशित दार जी पर लिखे अध्याय को उद्धृत किया। इस स्मारिका की प्रति मैंने डॉ० रंधावा साहब को भी भेज दी। इस स्मारिका पर मुझे 11 जनवरी 1981 को लिखा हुआ उनका एक पत्र प्राप्त हुआ जिसमें उन्होंने अपनी प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यक्त की थी :

"मैंने स. शोभासिंह पर आपकी पुस्तिका (पैम्फलेट) को सरुचि पढ़ा। इसमें बहुत ही उपादेय जानकारी है। कृपया इसे डबल स्पेश और समुचित हाशिया छोड़ कर टाइप करवा लें और मुझे दो प्रतियां भेज दें। मैं अपने संकलन से छायाचित्र सम्मिलित कर लूंगा और इसे ऑल इण्डिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी की पत्रिका 'रूप-लेखा' में प्रकाशित करूंगा। मुझे इस लेख को देख कर बहुत प्रसन्नता हुई है।"

डॉ० रंधावा से खुशी पाने का यह एक और अवसर था। मैंने उनकी इच्छानुसार उपर्युक्त लेख की प्रति उन्हें भेज तो दी लेकिन साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया कि यह लेख हिमालय संस्कृति पर लिखी मेरी अंग्रेजी पुस्तक से ही उद्धृत है जिस पर वह स्वयं टाइम्स ऑफ इण्डिया में समीक्षा लिख चुके हैं। लेकिन फिर भी यदि वे इसे 'रूप-लेखा' में प्रकाशित करना चाहें तो मुझे खुशी ही होगी।

इस पर उनका तुरन्त उत्तर (5 फरवरी 1981) आया। लिखा था, "मैं शोभासिंह पर लिखे आपके लेख की प्रतिलिपि 'रूप-लेखा' के लिए तैयार कर रहा हूं।" मैं उनके इस पत्र से प्रसन्न हुआ तथा मुझे ऐसा भी लगा कि यह 'रूप-लेखा' की नीति-रीति के बिल्कुल ही प्रतिकूल नहीं है। मैंने एक बार 'रूप-लेखा' के किसी अंक में हीरानंद शास्त्री का सजन् विरचित हमीरहठ विषयक चित्रमाला पर एक सचित्र लेख देखा था जो वर्षों पहले 'द जर्नल आँव इण्डियन आर्ट एण्ड इण्डस्ट्रीज' के अक्तूबर 1915 अंक में भी प्रकाशित हो चुका था। सम्भवतः यह विषय की ही उपयोगिता थी कि डॉ० रंधावा ने मेरे लेख को भी 'रूप-लेखा' जैसी स्तरीय कला-पत्रिका में पुर्नप्रकाशन के उपयुक्त समझा।

मैं यहां यह स्पष्ट कर देना चाहूंगा कि मेरे देखने में 'रूप-लेखा' का वह अंक नहीं आया जिसमें दार जी पर मेरा लेख प्रकाशित हुआ हो। लगभग दो वर्ष पूर्व मुझे पता चला कि डॉ० रंधावा ने 'रूप-लेखा' में दार जी पर अपना एक लेख प्रकाशित किया है। फिर मुझे रूप-लेखा के इसी अंक को देखने का अवसर मिला। लेख सचित्र छपा था बहुत ही सुन्दर : वह लेख मेरे लेख से भी अधिक जानकारीपूर्ण था और बड़ी बात यह थी कि वह रंधावा साहब की कलम से था। उसे देख-पढ़ कर मुझे इसलिए भी सन्तोष हुआ कि इस लेख के माध्यम से और किन्ही नये तथ्यों का उद्घाटन हुआ था।

इस लेख को देखने से पहले मैंने दर्जनों बार ऐसा सोचा था कि डॉ० रंधावा को पत्र लिख कर अपने लेख की पूछताछ करूं लेकिन हर बार यह सोच कर रुक जाता कि वह लेख डॉ० रंधावा के पास हैं, अतः सुरक्षित है और फिर वह मेरी पुस्तक का ही एक अंश है, नया भी तो नहीं है। अतः पुनः विचार करने पर अपनी उत्सुकता व्यर्थ सी मालूम देती रही। लेकिन अब जब डॉ० रंधावां (मृत्यु : 3 मार्च 1986) इस संसार में नहीं हैं, मैं सोचता हूं कि यदि उन्होंने पुर्नविचार पर मेरा लेख रोक कर स्वयं एक नया लेख लिखने के लिए श्रम किया तो वह सर्वथा उचित तो था ही, स. शोभा सिंह तथा उनके व्यक्तित्व व कृतित्व में रुचि रखने वाले व्यक्तियों के हित में भी था। यदि मेरा ही लेख छप जाता तो कला-जगत सम्भवतः उस नई उत्कृष्ट कृति से वंचित रह जाता, जिसका सृजन एक महान कला-मर्मज्ञ की कलम से हुआ था।

मैं डॉ० रंधावा के निकट नहीं था लेकिन हिमाचली कला से एक सचेत सरोकार होने के नाते मन में उनसे निकटता का एहसास बराबर बना रहा है और आज भी कितनी ही स्थितियां व सन्दर्भ हैं जहां इस महान् कलाविद का अनायास ही स्मरण हो आता है और उस कारण से वे स्थितियां व सन्दर्भ एक विशेष अर्थवता ग्रहण कर लेते हैं। शायद यह सोचना अनुचित नहीं है कि जब तक पहाड़ी चित्रकला की बात होती रहेगी, डॉ० रंधावा को याद किया जाता रहेगा।

शैलजा, संजोली, शिमला 171006

मण्डी जनपद-सिक्कों की ज़ुबानी

डॉ॰ कमल के. प्यासा

मण्डी एक प्राचीन ऐतिहासिक जनपद रहा है, इसमें कोई दो मत नहीं है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में इसे मण्डमति का नाम दिया गया है। महाभारत में एक स्थान पर माण्डव्य ऋषि की घोर तपस्या का वर्णन आता है और जनश्रुतियों के आधार पर मण्डी का नाम माण्डव्य ऋषि के नाम पर ही पड़ा बताया जाता है। माण्डव्य ऋषि के सम्बन्ध में यह भी बताया जाता है कि उन्होंने पडल के निकट कोलसरा नामक चट्टान पर घोर तपस्या की थी। इसी तरह से यहां के शासक भी महाभारत के पाण्डवों के चन्द्रवंशी वंश के शासक बताए जाते हैं।

मण्डी की ऐतिहासिकता : सिक्कों को ऐतिहासिक स्त्रोतों में सबसे पक्का और मूल स्त्रोत माना गया है। क्योंकि इन्ही सिक्कों के आधार पर हम किसी शासक व उसकी आर्थिक स्थिति का, उसके धर्म व विश्वास का, राज्य की सीमा, कला कौशल, जीव-जन्तु, वनस्पति, रहन-सहन, व्यापारिक सम्बन्ध, धातु विज्ञान व उस समय के अस्त्र-शस्त्रों आदि से पता लगा सकते हैं।

सिक्कों का प्रचलन : सिक्कों का प्रचलन कब और कैसे हुआ, यह एक लम्बा इतिहास है। ऐसा भी बताया जाता है कि शुरू-शुरू में वस्तुओं का सीधा आदान-प्रदान हुआ करता था जो कि बाद में पशुओं (गाय, बैल) द्वारा अदला बदली से किया जाने लगा। पशुओं की अदला बदली का चलन आज भी इस क्षेत्र में नलवाड़ी मेलों में आम देखने को मिल जाता है। समय के साथ-साथ पशुओं द्वारा अदला बदली जब परिपूर्ण नहीं समझी जाने लगी फिर कौड़ियों का प्रयोग किया जाने लगा। कौड़ियों के पश्चात धातु के टुकड़ों का और फिर सिक्कों का चलन शुरू हो गया। कौड़ियों की कीमत भी सिक्कों की तरह चढ़ती उतरती रहती थी। सामान्य से इसकी कीमत इस प्रकार होती थी :

20 कोड़ी = एक काकीनी
4 काकीनी = एक ताम्बे का पण
16 पण = एक चान्दी का द्रम्मा

इस तरह एक चान्दी का द्रम्मा 1280 कौड़ी के बराबर होता था। कौड़ियों का चलन मण्डी में भी रहा है। क्योंकि आज भी यहां गोलकों में सिक्कों के साथ इन्हें देखा

जा सकता है। जो कि इस बात की पुष्टि करता है कि यहां कौड़ियों का प्रयोग लेन देन के लिए किया जाता था।

स्थानीय सिक्के : मण्डी से प्राप्त सिक्कों के आधार पर इस जनपद का इतिहास ई. पू. 5वीं 6वीं शताब्दी पीछे तक चला जाता है। यहां से प्राप्त सिक्कों में स्थानीय सिक्के जिन्हें कि "ढोला ढब्बा" के नाम से जाना जाता था, रियासत के समय में आम चलते थे। ये तांबे के सिक्के मात्र गोलाकार ही मिलते हैं तथा इन पर शासक का नाम उर्दू फारसी या टांकरी लिपी में लिखा हुआ मिलता है। "ढोला ढब्बा" सिक्के की तरह ही इस क्षेत्र से ताम्बे, चान्दी के मुगल-सिक्के भी काफी मात्रा में प्राप्त हुए हैं।

फारसी में लेख : मुगलकालीन सिक्कों पर उर्दू फारसी में लेख लिखे मिलते हैं। चान्दी वाले सिक्कों में अधिकतर बादशाह अकबर, शाहजहां तथा औरंगजेब बादशाह के सिक्के ही प्राप्त हुए हैं। इन सिक्कों में एक तरफ सिक्कों के जारी करने वाले शासक का नाम, उसकी उपाधियां व सम्वत् आदि लिखा मिलता है। जबकि दूसरी तरफ उर्दू फारसी में लिखी कलमें व खलीफों के नाम पढ़ने को मिल जाते हैं। अकबर के एक सिक्के में कुछ इस तरह से लिखा हुआ पढ़ने को मिलता है।

एक तरफ : अल्लाह अकबर जाला जल्लाह
दूसरी तरफ : अबान ईल्लाही जरब अहम्मदाबाद 30
इसी तरह शाहजहां के एक सिक्के पर कुछ इस तरह लिखा मिलता है ;
एक तरफ : लरहक मजमद मुस्तक अली इल्ला मस्सलम।
दूसरी तरफ : ला ईल्लाही इल्ल ईल्ला मुहम्द रसूल ईला (कलम)
अली हैदर उस्मान अली बमजर खतान अबीन (खलीफां के नाम)।

सिक्कों का आकार : मुगल कालीन चान्दी के ये सिक्के गोलाकार तथा वर्गाकार दोनों आकारों में मिलते हैं। सिक्के भार में 11.5 ग्राम से लेकर 13.5 ग्राम तक के होते हैं और मोटाई में औसतन 0.25 सै. मी. से 0.4 सै. मी. तक के। मुगल शासकों के व्यापारिक सम्बन्धों व प्रभाव की पुष्टि इन सिक्कों से हुई है। इसी तरह से यहां के कुछ एक सिक्ख कालीन ताम्बे, चान्दी के सिक्के भी प्राप्त हुये हैं। इन सिक्कों की पहचान एक तरफ पंख या पत्ते का चित्रण तथा दूसरी तरफ गुरमुखी, टांकरी व उर्दू लिपी में लिखे गये लेख से हो जाती है। चान्दी वाले सिक्के के एक तरफ अपूर्ण रूप से उर्दू फारसी लिपी में गुरूगोबिन्द-सिंह जी का नाम अंकित मिलता है तथा दूसरी तरफ अपूर्ण जरब श्री अमृतसर जलूस-7 तख्त सम्वत् 1812 लिखा मिलता है[2]।

सिक्ख शासकों के साथ सम्बन्ध : सिक्ख शासकों के साथ सम्बन्धों की पुष्टि तो राजा

सिद्ध सेन (1684-1727 ई.) के समय गुरु गोविन्द सिंह जी के यहां पधारने से भी हो जाती है, जब कि राजा सिद्ध सेन ने गुरु जी के यहां पहुंचने पर उनका भव्य स्वागत किया था।

अन्य प्राचीन सिक्के : मण्डी से प्राप्त सिक्कों में केवल मुगलकालीन व सिक्खकालीन सिक्के ही नहीं गिनाये जा सकते, बल्कि अन्य अति प्राचीन सिक्के भी इस क्षेत्र से प्राप्त हो चुके हैं जो कि इस क्षेत्र का महत्व अपने आप में छिपाये हुये हैं। इन सिक्कों में बैल व घोड़े वाले सिक्के, कुषाण सिक्के, कबायली सिक्के, जैसे कुणिंद, गोदेय, गदियां व कुछ सम्य कबायली सिक्के जिनकी अभी पहचान हेतु खोजबीन जारी है, शामिल हैं। इसके साथ ही यहां से अभी हाल ही में कुछ आहत किस्म के चान्दी के सिक्के भी प्राप्त हुए हैं।

बैल व घोड़े वाले सिक्के : इस प्रकार के सिक्कों का प्रचलन सबसे पहले गुप्त काल में स्कन्द गुप्त द्वारा (ई. 455-467 ई) किया गया था। नवीं शताब्दी के गान्धार के शाही वंश ने भी इस प्रकार के चान्दी व ताम्बे के सिक्कों का चलन शुरू किया था। बाद में इसी तरह के सिक्कों का चलन यहां भारत में सपलपतिदेव द्वारा भी किया गया जिसका अनुकरण कई एक दूसरे शासकों ने भी किया।

इन शासकों में सामन्त देव मुख्य शासक माना जाता है। दसवीं शताब्दी में तोमर शासकों द्वारा तथा 12वीं 13वीं शताब्दी में कई दूसरे शासकों ने चान्दी, ताम्बे व मिश्रधातु (चान्दी व ताम्बा) के इसी प्रकार के सिक्के जारी किये जिनमें सामन्त देव का नाम वैसे का वैसा ही था लेकिन दूसरी तरफ घोड़े के ऊपर की तरफ सिक्के को जारी करने वाले शासक का नाम भी जोड़ दिया गया और फिर इस प्रकार के सिक्के बनने लगे।

दिल्ली के शासक मोहम्मद गौरी (सुलतान मोहम्मद बीन साम) द्वारा भी इस प्रकार के सिक्के चलाये गये। मुहम्मद बीन साम के सिक्कों में बैल के ऊपर की तरफ मुहम्मद बीन साम नागरी लिपी में लिखा मिलता है तथा श्री हमीरा घोड़े वाली तरफ लिखा मिलता है। 14वीं शताब्दी में इसी तरह के सिक्कों का चलन कांगड़ा के शासकों द्वारा भी किया गया। 1330 ई. में पिथमा चन्द ने इसी प्रकार के सिक्के चलाये। इसके सिक्कों में पिथमा चन्द का नाम बैल वाली तरफ लिखा मिलता है। कांगड़ा के पश्चात् इस प्रकार सिक्कों का चलन इसकी पड़ौसी रियासत में भी हो गया। मण्डी में इस प्रकार के प्राप्त[3] होने वाले सिक्कों में नागरी लिपि में अष्टपाल या मृतपाल लिखा मिलता है[4]। इस तरह इन सिक्कों से पड़ौसी रियासतों से सम्बन्धों की पुष्टि हो जाती है।

कुषाण कालीन सिक्के : कुषाण जाति का सम्बन्ध यू ची से बताया जाता है। जो कि बैक्ट्रीया में 120 ई. पू. एक शक्तिशाली कबीले के रूप में उभर चुका था। 25 ई. पूर्व इस कबीले ने यू ची के अन्य चार कबीलों को भी अपने प्रभुत्व में करके कुषाण नामक जाति को

जन्म दिया । कुषाणों ने आगे चलकर पार्थियों पर आक्रमण करके अफगानिस्तान के कुछ हिस्स गान्धार तथा निचली स्वात घाटी पर भी अधिकार कर लिया । इस तरह से बढ़ते हुये इन्होंने अपना साम्राज्य उत्तरी भारत तक फैला दिया और आगे वाराणसी तक पहुंच गये ।

कुषाण कालीन सिक्कों का ढेर मण्डी के 'चक्कर' नामक स्थान से प्राप्त हुआ था जिसमें कुषाण सिक्कों के साथ कुणिद तथा योद्धेय सिक्के भी प्राप्त हुये हैं । कुषाण कालीन इन प्राचीन सिक्कों से यह प्रमाणित हो जाता है कि कुषाणों का प्रभाव इस जनपद में भी था । ऐसा हो सकता है कि यह क्षेत्र कुषाण साम्राज्य के अन्तर्गत रहा हो ।

कबायली सिक्के : भारत में कहीं-कहीं तो देवी-देवता के नाम पर भी राज्य का सारा कार्यभार चलता था । इस तरह की शासन व्यवस्था वाले कुछ एक कबायली प्रजा तन्त्र भी थे जो कि पंजाब में अदुम्बर, कुणिद, यौद्धेय, गदिया तथा कुछ अन्य भी इसी प्रकार के राज्य थे जो बड़ी-बड़ी शहरी रियासतों के समकालीन हुये तथा इन सभी की शासन व्यवस्था शहरी रियासतों की तरह ही थी । इस तरह इन कबायली शासकों ने अपने देवी-देवताओं जैसे कि महादेव (शिव) चर्तेश्वर (शिव) ब्राह्मणय (कार्तिक) आदि के नाम से सिक्के चलाये ।

शासन व्यवस्था तो मण्डी में भी 1648 ई. में राजा सूरज सेन ने भगवान माधव राव के नाम से शुरू कर दी थी जब उसने अपना राजपाठ माधव राव की प्रतिमा को समर्पित कर दिया था[5] ।

कबायली प्रजातन्त्रों की स्वतन्त्रता कुछ समय बाद खत्म हो गई और फिर बड़े-बड़े राजाओं महाराजाओं का उदय होने लगा, लेकिन ज्यों ही इन राजाओं महाराजाओं का साम्राज्य डगमगाने लगा तो वह कबायली शासक फिर से खड़े हुये । दूसरी शताब्दी ई. पू. आगरीय, शुद्रक, राजन्य, सिबी, त्रिगर्त तथा यौद्धेय आदि के शासकों ने अपने-अपने सिक्के जारी किये ।

जन-जातीय सिक्के : मण्डी क्षेत्र से जो जनजातीय सिक्के प्राप्त हुये हैं, उनमें कुणिद, यौद्धेय व कुछ अन्य कबायली सिक्के शामिल हैं । कबायली सिक्के जो इस क्षेत्र से प्राप्त हुये हैं वे अधिकतर ताम्बे के ही हैं । लेकिन कुछ चान्दी के भी प्राप्त हो चुके हैं ।

कबायली कुणिद सिक्के : कुणिदों का निवास स्थान सतलुज नदी के दोनों तरफ बताया गया है । वाराहमिहिर ने उन्हें कहीं कुल्लू के समीप का बताया है[6] । विष्णु पुराण तथा मारकण्डेय पुराण में इन्हें कुलिंद कहा गया है । वधर कनिंघम में तो कनैतों को ही कुणिदों से सम्बन्धित बताया गया है[7] । कनैत लोग आज भी इस क्षेत्र में बसे हैं तथा सतलुज नदी भी तो मण्डी के साथ-साथ एक तरफ की सीमा रेखा बनाती है । इन प्रमाणों से स्पष्ट हो जाता है कि कुणिद जाति के लोग इस क्षेत्र के निवासी तो थे ही, साथ ही ये सतलुज नदी के दोनों तरफ निवास भी करते थे ।

वैसे कुणिंदों के सिक्कों का चलन प्रथम शती पूर्व से ही हो चुका था। जब कि एक तरफ शुग काल का पतन तथा दूसरी तरफ हिन्द यूनानी शासक भी घर कर चुके थे[8]। इस तरह से कुणिद स्वतन्त्र रूप से अपने राज्य की स्थापना के पश्चात् अपने सिक्के भी जारी कर चुके थे। कुणिदों के सिक्के कुषाण कालीन सिक्कों के ढेर के साथ ही 'चक्कर' नामक स्थान से प्राप्त हुये हैं। इन कुणिद सिक्कों से पता चलता है कि हिमाचल के अन्य क्षेत्रों की तरह यह क्षेत्र भी कुणिदों के प्रभाव में रहा है या इस क्षेत्र के कुणिदों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध थे।

यौद्धेय सिक्के : यौद्धेय प्राचीन काल की एक जानी मानी जाति थी तथा इसका नाम यौद्धेय इनकी शूर वीरता के कारण जान पड़ता है। पाणिनि ने भी अपनी अष्टाध्यायी में इन्हें पंजाब की लड़ाकू जाति बताया है[9]। इनका निवास स्थान भी सतलुज नदी के दोनों तरफ बताया गया है।

यौद्धेयों का उल्लेख तो रुद्र दामा के (सौराष्ट्र के अल्प राजा) जूनागढ़ अभिलेख में भी मिलता हैं, जिसमें कि 150 ई. के लगभग क्षेत्रप राजा द्वारा इन्हें हराये जाने का ब्योरा दिया गया है। आगे समुद्रगुप्त के अलाहबाद स्तम्भ में 470 ई. में इनका शक्तिशाली होने का उल्लेख किया गया है। इस तरह यौद्धेय सिक्कों का चलन भी प्रथम शती ई. पू. हो गया था तथा कुषाणों के पतन के पश्चात् इन्होंने पंजाब से हिमाचल के कांगड़ा व चम्बा क्षेत्रों की तरह अपने गणराज्य का विस्तार कर लिया था[10]।

यौद्धेयों के कुछ सिक्के चक्कर (मण्डी) से कुषाण तथा कुणिद सिक्कों के साथ ही प्राप्त हुये थे। इन सिक्कों पर एक तरफ हाथ ऊपर किये हुये एक मानव आकृति को दिखाया गया है तथा दूसरी तरफ छः सिरों वाले कार्तिक स्वामी को दिखाया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुषाणों के पश्चात् कांगड़ा से यह लोग इधर इस क्षेत्र में भी आये होंगे क्योंकि इन सिक्कों पर कुषाण सिक्कों की झलक भी स्पष्ट देखने को मिलती है।

आहत वाले सिक्के : इस प्रकार के सिक्के धातु के टुकड़ों पर आहत द्वारा निशान लगा कर तैयार किये जाते थे। इन निशानों में गोल चक्कर, सूर्य, वृक्ष, पत्ते, पशु आकृति, चापों वाली पहाड़ी आदि को देखा जा सकता है। आमतौर पर एक सिक्के पर पांच आहत के निशान होते थे, लेकिन कहीं-कहीं पर इससे कम या अधिक भी देखने को मिल जाते हैं।

मण्डी के बल्ह क्षेत्र से प्राप्त इन सिक्कों पर वृक्ष, सूर्य तथा चापों वाली पहाड़ी देखने को मिलती है[11]। इसके साथ-साथ कुछ और चिन्ह भी हैं जो स्पष्ट नहीं दिखाई देते। चान्दी के इन प्राप्त आहत वाले सिक्कों का भार 3.15 ग्राम से लेकर 3.95 ग्राम तक देखा गया है तथा ये 0.15 सै. मी. से 0.25 सै. मी. तक की मोटाई के हैं। इस प्रकार के सिक्कों का चलन भारत में छटी शताब्दी ई. पू. हो चुका था। इतने प्राचीन सिक्कों का यहां से प्राप्त होना क्या इस क्षेत्र की प्राचीनता का प्रतीक नहीं है? स्पष्ट है कि ईस. से पूर्व भी इस क्षेत्र का अपना अस्तित्व

था तथा इस क्षेत्र के व्यापारिक सम्बन्ध अपने आस-पास के राज्यों के साथ ही नहीं बल्कि दूर-दूर तक रहे। अभी तो कुछ कबायली (मानव आकृति वाले) सिक्के जिनकी पहचान हेतु खोजबीन जारी है, अपनी प्राचीनता को अपने में समेटे हुये हैं, जो कि इसी क्षेत्र की एक अन्य कड़ी होगी।

इस तरह सिक्कों का गहन अध्ययन करने मात्र से हमें प्राचीन इतिहास ही नहीं मिलता बल्कि इन्हीं के आधार पर कई एक अन्य बातों का भी पता चलता है जिससे कि हमारी संस्कृति, लोक विश्वास, जनजीवन, धातु विज्ञान, धार्मिक विचारधारा आदि जैसी बातों की भी जानकारी मिल जाती है।

---

1. तवाकद-ए-नासीरी पृ. 556
2. श्री गुरचरण लाल इन्कम टैक्स एडवोकेट, मण्डी के संग्रह से।
3. पी. एल. गुप्ता, सिक्के पृ. 219 क्र. न. 184-85
4. मेरे अपने संग्रह के सिक्के
5. मलाणा (कुल्लू) नामक गांव में आज भी सारे गांव की शासन व्यवस्था देवता के कहे अनुसार ही चलती है।
6. वराहमिहिर : वृत संहिता पृ. 32-33
7. सर. ए. कनिंघम : प्राचीन भारत के सिक्के पृ 71
8. डॉ० एल. पी. पाण्डे : प्राचीन हिमाचल का इतिहास, धर्म व संस्कृति पृ. 43
9. सर. ए. कनिंघम : प्राचीन भारत के सिक्के : पृ. 75
10. —वही—पृ. 51
11. हिमाचल लोक संस्कृति संस्थान मण्डी के संग्रह से व कमल प्यास के संग्रह से।

डाकखाना पनारसा,
जिला मण्डी, (हि० प्र०)

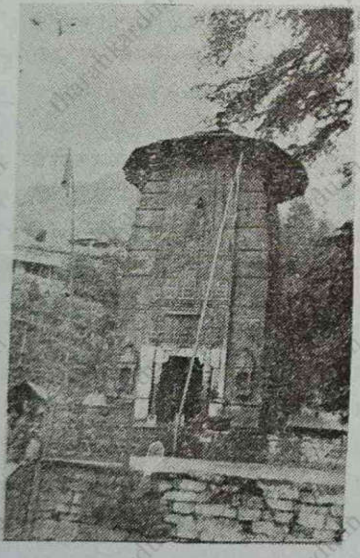

मणिमहेश मन्दिर

हिमाचली संस्कृति और वेद व्यास

O अमरदेव आंगिरस

प्राचीन भारतीय संस्कृति एवम् साहित्य महर्षि व्यास का ही पर्याय है। जिस प्रकार हिमालय भारतीय भूगोल एवम् संस्कृति का मानदण्ड है उसी प्रकार इस देश की सांस्कृतिक सुगन्धि को साहित्य में उकेरने वाले प्रथमतः महापुरुष महर्षि व्यास हैं। "व्यास" अर्थात् विस्तार। वेदों का विस्तार करने के कारण इस महापुरुष का नाम वेदव्यास पड़ा है। हिमालय के बद्रीवन में रहने के कारण इनका नाम वादरायण भी है। पुराणों के अनुसार इनका जन्म एक द्वीप के अन्दर हुआ था। वर्ण से ये श्याम थे, अतः इन्हें कृष्ण द्वैपायन कहते हैं।

वेदों को अपौरुषेय माना जाता है, तथापि भारतीय जनमानस वादरायण व्यास को वेदों से सम्बन्धित मानता है। विभिन्न मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने वेदों की ऋचाओं को रचा था, किन्तु वेदव्यास ने उन्हें सुव्यस्थित करके लोगों को सरल एवं बोधगम्य बनाया। 'व्यास' व्यक्ति विशेष का नाम नहीं, वरन एक पदाधिकारी की संज्ञा है। प्रत्येक युग में व्यास चारों वेदों का अठारह पुराणों में विस्तार करता है, इसी कारण वेदव्यास कहलाता है। भारतीय व्यास परम्परा के अनुसार कृष्ण द्वैपायन व्यास 28 वें और अन्तिम व्यास हैं। शेष सत्ताईस व्यासों की परम्परा का उल्लेख देवी-भागवत और विष्णु पुराण मे उपलब्ध हो जाता है।

वेद व्यास त्रिकाल दर्शी एवं इच्छागति हैं। अलौकिक ज्ञान के कारण महर्षि व्यास ने 'महाभारत' की रचना करके विश्व को दिव्य ज्ञान का अक्षय भण्डार प्रदान किया। अठारह पुराणों के साथ इन्होंने ब्रह्मसूत्रों का निर्माण भी किया, जिन पर भिन्न-भिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न भाष्यों की रचनाकर अपना मत स्थापित किया। "व्यास स्मृति" के नाम से इनका एक स्मृति ग्रंथ भी मिलता है। महाभारत तथा पौराणिक आख्यानों तथा पात्रों पर सहस्त्रों वर्षों में संस्कृत भाषा की परम्परा में असंख्य काव्य-ग्रंथों का निर्माण हुआ है। इन सब की आत्मा में महर्षि व्यास छुपे हुये हैं।

महर्षि व्यास पाराशर मुनि के पुत्र थे। ये मत्स्यगंधा के गर्भ से उत्पन्न हुये थे। यही मत्स्यगंधा जिसे सत्यवती के नाम से भी जाना जाता है, कैवर्तराज निषाद की पोष्यपुत्री थी। व्यास अविवाहित अवस्था में सत्यवती के गर्भ से पैदा हुये थे। इन्द्रप्रस्थ के राजा शान्तनु नदी पार

करते समय सत्यवती के सौन्दर्य पर मुग्ध हो गये थे, परिणाम स्वरूप इनका विवाह हुआ था। राजा शान्तनु के पूर्व पुत्र भीष्म ने इस विवाह के कारण आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत लिया था। सत्यवती से शान्तनु के दोपुत्र विचित्रवीर्य एवं चित्रांगद हुये थे, किन्तु दोनों के निस्सन्तान मर जाने के कारण व्यासदेव ने ही नियोग द्वारा इनकी रानियों तथा एक दासी के सन्तानें उत्पन्न की थी। ये सन्तानें थीं पाण्डु, धृतराष्ट्र एवं दासी पुत्र विदुर। वास्तव में ये व्यास के ही पुत्र थे। इस प्रकार समस्त महाभारत की कथा में व्यास की ही कथा है। कौरवों और पाण्डवों की नसों में एक ही रक्त का संचार था। अतः स्पष्ट है कि महाभारत काल की महत्वपूर्ण घटनाओं पर वेद व्यास का ही व्यक्तित्व है।

व्यास देव का जन्म किस स्थान पर हुआ था, यह तो स्पष्ट नहीं कहा जा सकता। इनके पिता पाराशर मुनि हिमालय में तप करते थे। व्यास का जन्म भी यमुना के द्वीप में हिमालय की श्रृंखला से ही सम्बद्ध है।

हिमालय के अनेक स्थानों पर व्यास कुण्ड मिलते हैं हिमाचल प्रदेश के विभिन्न स्थानों पर छोटी-छोटी सरिताओं तथा सरोवरों को "व्यास गंगा" अथवा "व्यास कुण्ड" कहने की परम्परा है। अमरनाथ पर्वत, बद्रीनाथ, केदारनाथ तथा किन्नर कैलाश श्रृंखलाओं पर महर्षि के पवित्र कुण्ड इनके स्मृति चिन्ह हैं। व्यास पूजा का पवित्र पर्व 'व्यास पूर्णिमा' गुरु-पूजा के रूप में प्रदेश में आषाढ़ मास में बहुत श्रद्धा एवं भक्ति से मनाया जाता है।

हिमाचली क्षेत्रों में मनु, वशिष्ठ, जमदग्नि, भृगु, परशु राम, सहस्त्रबाहु, पाराशर, मार्कण्डेय आदि ऋषि मुनियों ने तपस्याएं की थीं। बादरायण व्यास ने वेद सूक्तों का सम्पादन इन्हीं उपत्यकाओं में किया था, अतः इनका नाम तथा विचारधारा यहां की संस्कृति में रच-बस गया है। यहां का जनसाधारण व्यास से सम्बन्धित इस उक्ति का अनुपालन करता सा दिखता है--

"अष्टा दश पुराणेषु व्यासस्य वचनम् द्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम्।।

यहां के निवासी शान्तिप्रिय, परोपकारी तथा दूसरों के दुःख में सहभागी सहज ही बन जाते हैं। हिमाचल के कुल्लू क्षेत्र में पराशर मुनि के प्राचीन देवस्थल वर्तमान हैं। रोहतांग तो महर्षि की तपस्थली है ही। कुल्लू में 'कमांद' नामक गांव के पास चोटी पर 'कोठी महाराजा' में इनका पवित्र स्थल है। इनके पिता पराशर के देवस्थलों में यहां लोक स्तुति इस प्रकार गाई जाती है।

'म्हारे देउआ तू ऋषिया परासड़ा, तेरी जय जय कार हो।
डूगा-डूगा सौर तेरा मन्दर पुराणा, लाई देणा बेड़ा पार हो। .....
सती जुग त्रेता जुग द्वापर सारा कलिजुगा तैं ही पाया पार हो
तेरी जय जयकार हो.........

पर्वत व्यास रिखि, व्यास कुण्ड तीर्था जुगो री याद तेरी अंत नी हो
तेरी जय जय ....,

पराशर के जन्मोत्सव पर पाराशर झील के समीप मन्दिर में पराशर स्तुति इसी लोकगीत द्वारा की जाती है। 'व्यास रिखि' श्रृंखला के समीप मण्डी क्षेत्र की पर्वत श्रृंखला पर भी पराशर आश्रम स्थित है।

पुराणों एवं महाभारत के सूत्रधार के रूप में व्यास हिमाचल की लोककथाओं, जनश्रुतियों तथा लोककथाओं में वर्तमान हैं। कुल्लू क्षेत्र के मौलिक चिन्तक श्री लाल चन्द प्रार्थी जी ने महर्षि व्यास के जन्म स्थल तथा तपस्यास्थली का बहुत मनोरंजक वर्णन किया है।

'कमांद, गांव से थोड़ी दूर 'दरपोइण' नाम का गांव और देव स्थल आज भी मौजूद है जो 'द्वैपायन' शब्द का ही बिगड़ा हुआ रूप प्रतीत होता है। इस जगह का नाम दरपोइण जरूर है परन्तु देव मन्दिर पराशर का ही माना जाता है। पराशर का प्राचीन आश्रम और उसके साथ ही उनके पुत्र कृष्ण द्वैपायन के नाम से 'दरपोइण' गांव का होना इस बात का पूर्ण प्रमाण है कि बचपन से ही वेद व्यास का पालन-पोषण इस पराशर आश्रम में हुआ।

कहते हैं कि महर्षि व्यास ने मृगुतुंग (रोहतांग) पर्वत श्रृंखला में इसी स्थान पर तप किया था। जिसके कारण इसका नाम 'व्यास ऋषि' पड़ा और यहां से गुजरने वाली नदी का नाम विपाशा से व्यास हुआ। इसी नदी के किनारे कृष्ण द्वैपायन ने वेदों का संकलन किया। 'कुलान्त पीठ' महात्म्य के अनुसार इस नदी को व्यास गंगा कहा जाता है और वर्णन मिलता है कि व्यास देव ने यहां आश्रम बनाया और जिस कुण्ड से विपाशा निकली उसका नाम व्यास कुण्ड बताया। परन्तु आज तक चली आ रही परम्परा के अनुसार तो विपाशा के मूल स्रोत को व्यास ऋषि कहा जाता है, जबकि सोलंग नदी के स्रोत को, जो भृगु तुंग श्रृंखला (जहां भृगु ऋषि ने तप किया था) के सामने धवल गिरि श्रेणी में हैं, 'व्यास कुण्ड कहते हैं'। 'व्यास कुण्ड' से निकला हुआ यह सोलंग नाला भी पलचान गांव के पास व्यास नदी में आकर मिल जाता है। श्रीवेद व्यास ने कुण्ड के स्थान पर भी आकर तप किया हो तो कोई आश्चर्यजनक बात नहीं क्योंकि कुल्लू में ही कोठी का ईस और कोठी सारी में दो और गांव 'व्यासर' नाम से आज भी मौजूद है। 'व्यासर' शब्द 'व्याससर' का ही संक्षिप्त रूप है। महाभारत (आदि पर्व) में भी श्री व्यास जी का हिमालय पर तपस्या करने के लिये जाने का वर्णन है और हिडिम्बासुर वध के तुरन्त पश्चात् उनका पाण्डवों से मिलना सिद्ध करता है कि व्यास आश्रम (मानवालय-मनाली) के कहीं आस-पास ही होगा जहां भीमसेन और हिडिम्बा की प्रेम क्रीड़ाएं हुई थीं जो हिडिम्बासुर वध का मूल कारण था।

कुल्लू क्षेत्र की नींव व्यास पुत्र विदुर ने डाली थी। विदुर महाभारत की कथा के अनुसार दासी पुत्र था, अन्य पाण्डू और धृतराष्ट्र रानियों से उत्पन्न हुये थे। कुल्लू का पुराना नाम

'मकरासा' या 'मकड़ासा' था, जिसका सीधा सम्बन्ध विदुर पुत्र 'मुकर' से था। जे० हुच्चीसन् एवं वोगल ने कुल्लू की इस श्रुति का दिलचस्प वर्णन किया है।

विदुर ने तान्दी की कन्या से विवाह किया था। यह तान्दी एक राक्षस राजा था। इस स्त्री से विदुर के दो पुत्र हुए। मुकर और भोट। व्यास ऋषि जो कुल्लू की वादियों में निवास करते थे— ने इन पुत्रों का पालन-पोषण किया। भोट ने सुदंगी नाम की स्त्री से विवाह किया। यह भोटण्ट से आयी थी। यह ब्राह्मण धर्म से असम्पृक्त थी तथा आसुरी थी। एक दिन उसने गोमांस पकाकर भोट को दे दिया। भोट ने उसे खा लिया। 'मुकर' वहां न था। जब वह आया तो दादा व्यास ने यह घटना उसे बता दी। मुकर एक सिद्धान्तप्रिय तथा धार्मिक युवक था। वह इस अधर्म को देखकर वहां से चला गया। वह सतलुज के दक्षिण में बस गया और उसने 'मकरासा' (कुल्लू) की नींव डाली। भोट ने (भोटी राज्य) तिब्बत की नींव डाली। इसी कारण वहां के लोगों को भोटिया कहा जाने लगा। आज भी तिब्बत के लोगों को 'भोट' कहा जाता है। यह जनश्रुति भीमसेन तथा हिडिम्बा के प्रणय सम्बन्धों की लोक व्याख्या के रूप में पल्लवित हुई लगती है। वैसे भी महाभारत के पात्र पाण्डव तीन बार हिमालय में वनवास अथवा भ्रमण के लिए आये थे। अतः उन्हें देवताओं, कुलजा तथा वीरों के रूप में समस्त प्रदेश में मान्यता मिली है।

महर्षि व्यास जन्मते ही मां मत्स्यगंधा की आज्ञा से वन में तपस्या करने चले गये थे। उन्होंने मां से कहा था— "जब कभी तुम्हें मेरी आवश्यकता हो तो तुम मुझे याद कर लेना। उसी समय मैं तुम्हारे पास चला आऊंगा।" व्यास अलौकिक शक्ति सम्पन्न पुरुष थे। उन्होंने महाभारत युद्ध को सम्पूर्ण रूप से देखने के लिये संजय को दिव्य चक्षु प्रदान किये थे।

परम्परा से बिलासपुर का प्राचीन नाम व्यासपुर था। कहते हैं यहां स्थित व्यास गुफा में महर्षि ने तपस्या की थी। इस प्रकार "व्यासपुर" शब्द से बिगड़ कर इसका नाम बिलासपुर पड़ा है।

कहलूर रियासत के राजा दीपचन्द, 1650 ई० ने इस राज्य के गौरव को पुर्नस्थापित करने का प्रयत्न किया। राजा बीकचन्द के समय से राजपरिवार का आवास सुनैहनी में था। राजा दीपचन्द को यह स्थान अच्छा नहीं लगा। कहते हैं दो हिन्दू और दो मुसलमान फकीरों के कहने के अनुसार इस राजा ने सतलुज के बायें किनारे 'व्यास गुफा' के पास अपनी राजधानी का निर्माण किया। वहां उसने एक महल बनाया जिसे 'ढोलर' कहा जाता है। इस स्थान से नदी का प्रवाह देखा जा सकता था। इसी के पास एक नगर की नींव पड़ी जो व्यासपुर तथा बिलासपुर कहलाया।

लोक विश्वास के अनुसार व्यास गुफा बिलासपुर से गुफा के रास्ते व्यास ऋषि मार्कण्डेय माकड़ी नामक स्थान पर आया करते थे। माकड़ी में मार्कण्डेय का प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है जो 'मार्कण्ड' के नाम से प्रदेश में विख्यात है। इस स्थान पर बैशाख संक्रान्ति को मार्कण्डेय का मेला

लगता है जहां व्यास कुण्ड में जन-साधारण स्नान करना पवित्र समझते हैं। पूर्णिमा को ग्रहण के अवसर पर भी श्रद्धालु इस व्यास कुण्डो में स्नान करने आते हैं।

समस्त भारत में महर्षि व्यास समान रूप से पूज्य हैं। उत्तर प्रदेश के लोक विश्वासों के अनुसार वेद व्यास का जन्म यमुना द्वीप में कालप नगर में भी माना जाता है। यहां व्यास का प्राचीन मन्दिर वर्तमान है। प्रति वर्ष आषाढ़ पूर्णिमा को गुरूपर्व के रूप में यहां मेला आयोजित होता है।

वस्तुतः महर्षि व्यास हिमालय की वन वीथियों में वेदों-पुराणों का पारायण कर समस्त भारत के जनमानस पर छा गये। हिमाचली संस्कृति के लोक विश्वास महर्षि व्यास की धरोहर माने जा सकते हैं। अनेक महाभारत के पात्र एवं पौराणिक ऋषि मुनि जो महर्षि व्यास की साहित्यिक रचनाएं हैं—हिमाचली क्षेत्रों में लोक देवों के रूप में प्रतिष्ठित है।

देव निवास,
समीप दाड़ला फलोद्यान,
डाकघर दाड़ला, जिला सोलन
(हि. प्र.) 171102

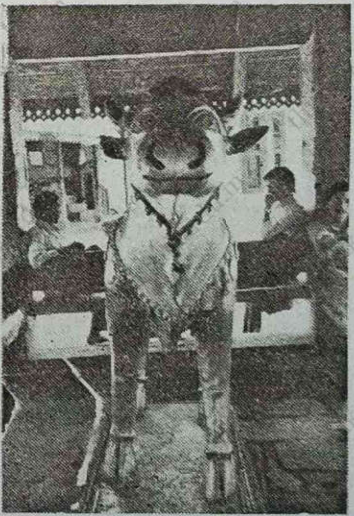

नन्दी भरमौर

राज कंवल

O शबाब ललित

उर्दू कहानी के क्षेत्र में हिमाचल के जिन कहानी 'कारों ने कुछ स्थाई और टिकाऊ पग चिन्ह छोड़े हैं उनमें स्वर्गीय राज कंवल सब से पृथक् और अग्रसर दिखाई देते हैं। बीसवीं शताब्दी के छठे और सातवें दहाके में राज कंवल के अफ़सानों की खासी धूम मची हुई थी। भारत और पाकिस्तान के उत्कृष्ट पत्र और पत्रिकायें उनके अफ़सानों को बड़े गर्व के साथ प्रकाशित करते थे। इसी दौरान में उनके दो खूबसूरत कहानी संग्रह—"औरत एक पहेली" और "चनार के साये" प्रकाशित होकर उर्दू-प्रेमियों में सर्वप्रिय हुए। पहला संग्रह देश की एक प्रतिष्ठित पत्रिका "बीसवीं सदी" के प्रकाशन विभाग ने प्रकाशित किया। इस पत्रिका में राज कंवल के अफ़साने बाकायदा छपते रहते थे। "बीसवीं सदी" के सन् 1950 के विशेष वार्षिक अंक में राज कंवल की कहानी और तस्वीर देखकर मुझे आश्चर्य हुआ, क्योंकि उस समय राज कंवल की आयु केवल अठारह वर्ष की होगी। इतनी कम आयु में अफ़साना निगारी के क्षेत्र में इस कदर कीर्ति प्राप्त कर लेना प्रभु की ही अपार कृपा कहा जा सकता है। निश्चित है कि कहानी लेखन का हुनर उन्हें कुदरत से वरदान रूप में मिला था।

राज कंवल जिनका असली नाम सरदार चरणजीत सिंह आसी था गुलाब कॉटेज शांखली, शिमला में 21 मार्च 1932 को एक सिख परिवार में पैदा हुये। उनका खानदान पिछली 3-4 पुश्तों से शिमला में बसा हुआ था, उनके पिता सरदार कर्म सिंह शिमला के तार घर में सेवारत थे। कुछ वर्षों बाद यह परिवार शांखली में ही अपने निजी मकान कर्म निवास में जा बसा।

बटलर हाई स्कूल शिमला से मैट्रिक पास कर लेने के पश्चात् राज कंवल दिल्ली चले गये जहां उन्होंने पहले तार विभाग और फिर सैन्ट्रल वाटर एण्ड पावर कमीशन में मुलाज़मत की। इस दौरान में उन की मित्रता मजाज़ लखनवी से हो गई, और वह उर्दू शायरी की ओर आकर्षित हुए। वह अच्छे खासे शेर कहने लगे। शायरे इन्क़लाब जोश मलीहाबादी की शायरी से वह बहुत प्रभावित थे। परन्तु उन्होंने साहित्यिक जगत में विख्याति एक अफ़साना निगार के तौर पर ही प्राप्त की। वह बचपन ही से अफ़साने लिखने लगे थे।

जन्म भूमि की मुहब्बत राज कंवल को दिल्ली की तीव्रगामी जिंदगी से वापस शिमला खेंच लाई। यहां उन्होंने थोड़े दिन आकाशवाणी केन्द्र में काम किया और फिर 1959 में नगर निगम शिमला में क्लर्क नियुक्त हुए। तेरह अक्तूबर 1965 को उनका विवाह सावित्री आसी से हुआ और छः वर्ष पश्चात् राज कंवल 26 मार्च, 1972 को निस्सन्तान ही इस नश्वर संसार से विदा हो गए जिसमें उन्होंने अपने जीवन की केवल 40 बहारें देखीं। उनकी मृत्यु शिमला के रिपन अस्पताल में हुई जहां वह जिगर के रोग से पीड़ित होकर दाखिल हुए थे। उन दिनों वह शिमला नगर निगम में हैड क्लर्क की पदवी पर थें। हिमाचल के प्रसिद्ध उर्दू कवि अरमान शहाबी और राज कंवल कारपोरेशन कार्यालय के एक ही कमरे में 11 वर्षों तक साथ बैठ कर काम करते रहे।

राज कंवल जरूरत से ज्यादा एकान्त पसंद थे। शिमला निवासी होने के बावजूद वह माल रोड़ पर घूमते नहीं देखे जाते थे। वह बहुत ही सौम्य स्वभाव शिष्टाचारी और विनीत व्यक्ति थे। लिबास और बोलचाल दोनों में अद्वितीय नफ़ासत वाले इस कलाकार को प्रकृति के दृश्यों से वालिहाना प्यार था। प्रातः उठ कर अपने बैड रूम की खिड़की खोलकर कमर पर हाथ रखे हुए पहरों खड़े-खड़े प्रकृति के मन मोहक दृश्यों का आनन्द लेना उन की दिनचर्या में शामिल था। शायद प्रकृति ही उनके कहानी लेखन का प्रेरणा स्त्रोत थी। उर्दू शायरी और अंग्रेज़ी साहित्य के रसिया, कलासिकी संगीत और वाद्य वादन के अभ्यासी, राज कंवल को पान खाने का बड़ा शौक था। हस्त रेखा शास्त्र में भी उन की गहरी रुचि थी। उर्दू के महानतम् कहानीकारों कृष्णा चन्द्र, महेन्द्र नाथ, राजिन्द्र सिंह बेदी आदि से राज कंवल की घनिष्ट मित्रता थी और बाक़ायदा पत्र व्यवहार भी। वह बहुत ही ख़ूबसूरत और स्नेह भरे पत्र लिखते थे।

1966 से राज कंवल रिन्दे-बला नोश हो गये थे। इसी मदिरा पान की अधिकता ने ही शायद उन्हें जिगर की व्याधि से ग्रस्त कर दिया जो 40 वर्ष की अल्प आयु में ही उन की जान लेकर रही। राज कंवल की जीवन संगिनी श्रीमती सावित्री आसी ने निस्सन्तान होने के बावजूद दोबारा विवाह नहीं किया। वह आजकल अपने नव निर्मित निजी मकान सावित्री कॉटेज संजौली में रहती हैं। आजकल वह राजकीय माध्यमिक पाठशाला जाखू (शिमला) में मुख्याध्यापिका हैं। राज कंवल की दो छोटी बहनें सोलन में लैक्चरर हैं।

राज कंवल के अफ़सानों का परिवेश हिमाचल की सुन्दर धरा और इस पर बसने वाले सुहृद लोग हैं। उनकी कहानियों के पलाट और घटनाओं का 'ताना बाना, इनके पात्र और परिस्थितियां (सिचुएशन Situations) सभी पर हिमाचल की गहरी छाप मिलती है। उनके कहानी संग्रह "चनार के साये" में सम्मिलित लगभग सभी अफ़सानों का घटना चक्र शिमला नगर के रमणीय दृश्यों और रूमान की धुन्द में लिपटे हुए माहौल के इर्द-गिर्द घूमता है। इस संग्रह में इस तथ्य का समर्थन करती हैं उनकी कुछ बहुत ही सुन्दर और सशक्त कहानियां, जैसे : "कौन गुजरा है इधर से", अगर "मुर्दे जी उठें", "अंधा कुवां", "रेत के ज़र्रे", "रोबेनिया के फूल", "जब

बहार आती है", "उम्मीदवार शौहर" आदि। कुदरत के दृश्यों के लालित्य का चित्रण, पावन प्यार की सुखद अनुभूतियां एवं संवेदनायें, नारी के प्यार और आक्रोश का मनोवैज्ञानिक विवेचन उनके अफ़सानों के प्रमुख तत्व हैं। मुहब्बत राज कंवल की दृष्टि में मानव की आत्मा की प्यास भी है और इस के घावों का मरहम भी। यही मुहब्बत का जज़बा उत्साहपूर्ण जिन्दगी का स्त्रोत है और जीवन की खूबसूरती का कारण। उनके प्रकृति चित्रण का सम्बन्ध उनकी अपनी आत्मा की सुन्दरता, स्वभाव की नफ़ासत पसंदी, मौलिक हुस्न परस्ती और उनकी कलात्मक साइकी से है। औरतों की किरदार निगारी में तो वह विख्यात अफ़साना निगार राजिन्द्र सिंह बेदी से भी दो कदम आगे निकलते दिखाई देते हैं।

जरूरत है कि हम ऐसे महान् हिमाचली साहित्यकारों की मुनासिब यादगारें कायम करें। हिमाचल कला-संस्कृति एवं भाषा अकादमी राज कंवल की स्मृति में हर वर्ष एक कहानी संध्या अथवा कहानी गोष्ठी का आयोजन किया करें। यदि अकादमी राज कंवल की कहानियों के संग्रह पुनः प्रकाशित करें और उनकी बिक्री करे तो हिमाचल के इस भूले बिसरे अफ़साना निगार की कृतियों से आज की पीढ़ी बहुत कुछ सीख सकती है।

क्षेत्रीय प्रचार अधिकारी
सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय
(भारत सरकार) रेलवे बोर्ड
बिल्डिंग शिमला–1710003

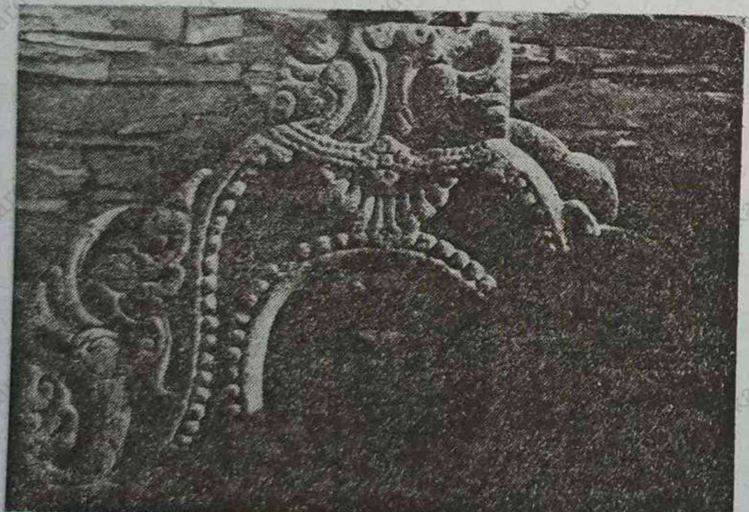

भद्रखमु

लाहुली लोक-गीत

धरती माता की कनिष्ठा पुत्री का कथात्मक गीत

—के० अंगरुप लाहुली

धरती मातायें त्रिये कूड़ी जामे जी ओ।
धरती मातायें त्रिये कूड़ी जामे जी ओ॥

अति प्राचीन काल की बात है कि एक समय धरती माता की कोख से तीन पुत्रियां उत्पन्न हुई।

ज्येठा जेठा-कुड़िये नमु-नारेणा ब्यायी जी ओ।
ज्येठा जेठा-कुड़िये नमु-नारेणा ब्यायी जी ओ॥

उनमें सबसे बड़ी पुत्री की शादी भगवान नारायण के साथ सम्पन्न हुई।

तेटी कणा-कुड़िये पंजा पांडूया ब्यायी जी ओ।
तेटी कणा-कुड़िये पंजा पांडूया ब्यायी जी ओ॥

उससे कनिष्ठा पुत्री का विवाह पंच पाण्डवों के साथ हुआ।

तेटे कणा-कुड़िये लचा चारुणी गेयी जी ओ।
तेटे कणा-कुड़िये लचा चारुणी गेयी जी ओ॥

उनमें सबसे कणीक पुत्री प्रतिदिन भेड़-बकरियां चराने के लिए जंगल जाया करती थी। एक दिन उसे जंगल में एक दैत्य मिला, जो सूर्य और चन्द्रमा का बैरी राहु था।

राहु डोमे यो चोरी कारी नेयी जी ओ।
राहु डोमे यो चोरी कारी नेयी जी ओ॥

मौका पाकर वह नीच डोम राहु उस अबोध बालिका का अपहरण कर किसी घने जंगल में ले गया। संध्या के समय धरती माता की वह कनिष्ठा पुत्री जब जंगल से वापस नहीं लौटी तो धरती माता उद्विग्न हो उठी। उन्होंने पुत्री की खोज के लिए चारों ओर दूत दौड़ाए, परन्तु पुत्री का कहीं कोई अता-पता नहीं लग रहा था। उसी समय सूरज और चन्द्रमा उस वन प्रदेश में आखेट के लिए निकले हुए थे, तो रास्ते में जन कोलाहल के मध्य उन्होंने धरती माता की कनिष्ठा पुत्री के लापता होने की खबर सुनी। वे तुरन्त धरती माता के पास पहुंचे और उनकी पुत्री को खोजने में सहयोग करने का आश्वासन देने लगे।

सूरजा चन्दुरा-ये हेड़ेणु गेयी जी ओ।
सूरजा चन्दुरा-ये हेड़ेणु गेयी जी ओ॥

उसके बाद सूरज और चन्द्रमा धरती माता की पुत्री को खोजने के बहाने आखेट खेलने जंगल चले

गए। उनके मन में पुत्री के कुशल-क्षेम का पता लगाने की अपेक्षा आखेट की अधिक उत्कण्ठा थी। इस प्रकार वे आखेट—

हेड़ेणु गेयां-ये पाछामा मुलुके जी ओ।
हेड़ेणु गेयी-ये पाछामा मुलुके जी ओ॥

देखते (खोजते) उस वन प्रदेश के पश्चिम क्षेत्र को निकल गए परन्तु उन्हें—

पाछामा मुलुके-यो मिरगासु नायी जी ओ।
पाछामा मुलुके-यो मिरगासु नायी जी ओ॥

पश्चिम क्षेत्र में कोई मृगया (शिकार) नहीं मिली। धरती माता की पुत्री की खोज करने की सुध तो वे कभी से विस्मरण कर चुके थे। अतः अब वे शिकार—

पेटेनु गेयी-से दाखाणा मुलुके जी ओ।
पेटेनु गेयी-से दाखाणा मुलुके जी ओ॥

देखते-खोजते दक्षिण जनपद की ओर चले गये, परन्तु—

दाखाणा मुलुके-यो मिरुगासु नायी जी ओ।
दाखाणा मुलुके-यो मिरुगासु नायी जी ओ॥

दक्षिणी जनपद में भी उन्हें कोई शिकार नहीं मिला। इस प्रकार जब वे शिकार—

पेटेनु गेयी-ये पूरबाला मुलुके जी ओ।
पेटेनु गेयी-ये पूरबाला मुलुके जी ओ॥

देखते-ढूंढते उस भू-भाग के पूर्वी क्षेत्र में चले गए परन्तु देवी प्रेरणा से—

पूरबाला मुलुके-यो मिरुगासु नायी जी ओ।
पूरबाला मुलुके-यो मिरुगासु नायी जी ओ॥

पूर्वी क्षेत्र में भी उन्हें कोई आखेट हाथ न लगा। निराश होकर अब वे शिकार की—

पेटेनु गेयी-ये ऊतुड़ा मुलुके जी ओ।
पेटेनु गेयी-ये ऊतुड़ा मुलुके जी ओ॥

खोज में उस प्रदेश के उत्तर ओर चल पड़े, परन्तु अपशकुन के कारण उन्हें—

ऊतुड़ा मुलुके-यो मिरुगासु नायी जी ओ।
ऊतुड़ा मुलुके-यो मिरुगासु नायी जी ओ॥

उत्तरी क्षेत्र में भी कहीं कोई शिकार नहीं मिला—

सूरजा चन्दुरा-ये भूखेनु भूखे जी ओ।
सूरजा चन्दुरा-ये भूखेनु भूखे जी ओ॥

सूरज और चन्द्रमा चारों ओर दौड़-धूप करने की वजह से तथा आखेट के न मिलने के कारण अब भूख से अभिभूत हो रहे थे, तो भी साहस बटोर कर, इस बार वे—

हेड़ेणु गेयी-यो बिन्दरा बाणे जी ओ।
हेड़ेणु गेयी-यो बिन्दरा बाणे जी ओ॥

शिकार खोजने बिन्ध्या वन की ओर निकल पड़े, परन्तु रघु रक्षित वन में उन्हें कोई आखेट

हाथ न लगा -

सूरजा चन्दुरा-ये आखोरा वाणे जी ओ ।
सूरजा चन्दुरा-ये आखोरा वाणे जी ओ । ।

अन्त में सूरज और चन्द्रमा एक घनघोर वन में प्रवेश कर गए ।

आखोरा वाणे-यो मिरुगासु मारी जी ओ ।
आखोरा वाणे-यो मिरुगासु मारी जी ओ । ।

इस बार उन्हें उस घने जंगल में एक शिकार मिला और उसे उन्होंने तीर मार कर मार डाला ।

मिरुगा मारी-ये चुली-चौकी दीती जी ओ ।
मिरुगा मारी-ये चुली-चौकी दीती जी ओ । ।

मृगया (शिकार) मारने के पश्चात् सूरज और चन्द्रमा अब चूल्हा-चौका की व्यवस्था करने लगे ।

चुली-चौकी दीती-ये रासौणी पाड़ी जी ओ ।
चुली-चौकी दीती-ये रासौणी पाड़ी जी ओ । ।

चूल्हा-चौका की व्यवस्था हो जाने के पश्चात् अब वे दोनों खाना पकाने बैठ गए ।

रासौणी पाड़ी-ये रासुणी खायी जी ओ ।
रासौणी पाड़ी-ये रासुणी खायी जी ओ ।

भोजन पकाने के पश्चात् वे दोनों खाना खाने लगे ।

रासुणी खायी-ये त्रीक्षा लगायी जी ओ ।
रासुणी खायी-ये त्रीक्षा लगायी जी ओ । ।

खाना खा लेने के पश्चात् जब उन्हें प्यास लगने लगी तब-

सूरजा-चन्दुराये पाणी तोपोणी गेयी जी ओ ।
सूरजा-चन्दुराये पाणी तोपोणी गेयी जी ओ । ।

सूरज और चन्द्रमा पानी खोजने चले गए ।

बून्हे प्रेणाड़े-यो खादुरा पाणी जी ओ ।
बून्हे प्रेणाड़े-यो खादुरा पाणी जी ओ । ।

थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर उन्हें सड़क के निचले वाले नाले के खादर में जमा थोड़ा] सा पानी मिला, परन्तु वह पानी गंदला था ।

सूरजा चन्दुरा-ये ऊपुके प्रेणाड़े गेयी जी ओ ।
सूरजा चन्दुरा-ये ऊपुके प्रेणाड़े गेयी जी ओ । ।

इसलिए सूरज और चन्द्रमा सड़क के ऊपरी भाग वाले नाले में पानी खोजने चले गए ।

ऊपुरु प्रेणाड़े-यो नीम्बूड़ा पाणी जी ओ ।
ऊपुरु प्रेणाड़े-यो नीम्बूड़ा पाणी जी ओ । ।

संयोग से ऊपर वाले नाले में उन्हें निर्मल-स्वच्छ जल मिल गया । उन्होंने जी भर कर पानी पिया । जब वे वहां से वापस होने लगे तो उन दोनों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि-

लोंगा प्रेणाड़ेयो एका इस्त्री आसे जी ओ ।
लोंगा प्रेणाड़ेयो एका इस्त्री आसे जी ओ । ।

उन दो नालों के मध्य वाले भू-स्थल पर एक स्त्री वृक्ष के नीचे चुप-चाप बैठी हुई है।

सूरजा चन्दुरा-ये पूछणी लागी जी ओ।
सूरजा चन्दुरा-ये पूछणी लागी जी ओ।।

सूरज और चन्द्रमा उस स्त्री से इस प्रकार पूछने लगे कि-

बोलो इस्त्री री कुणु तेरी माता जी ओ।
बोलो इस्त्री री कुणु तेरी पिता जी ओ।।

हे नारी ! बोल कि तुम्हारी माता कौन है ? और तुम्हारे पिता कौन है ? इस पर उस स्त्री ने कहा कि-

बाथेरी माणुये बाथे जोगु गाछे जी ओ।
बाथेरी माणुये बाथे जोगु गाछे जी ओ।।

हे ! पथ के पथिक ! आप दोनों सीधे अपने रास्ते चले जाएं। मुझ से आप दोनों का क्या लेना-देना है ? सूरज और चन्द्रमा उस की बातों की ओर विशेष ध्यान दिए बिना फिर प्रश्न करने लगे कि-

बोलो इस्त्री री कुणु तेरी माता जी ओ।
बोलो इस्त्री री कुणु तेरे पिता जी ओ।।

हे नारी ! बोल कि तुम्हारी माता कौन है ? और तुम्हारे पिता जी कौन है ? इस बार वह स्त्री थोड़ी रुठ सी गई और कहने लगी —

बाथेरी माणुये क्याये प्रोजाणा लागी जी ओ।
बाथेरी माणुये क्याये प्रोजाणा लागी जी ओ।।

हे पथ के पथिक ! आप दोनों को क्या प्रयोजन लगा है कि मैं कौन हूं और मेरे माता पिता कौन हैं ?

सूरजा चन्दुराये फिरी-फिरी पुछन्दायी जी ओ।
सूरजा चन्दुराये फिरी-फिरी पुछन्दायी जी ओ।।

यौवन की मस्ती में मदन्ध सूरज और चन्द्रमा उसे तंग करने की मनोवृत्ति से पुनः-पुनः प्रश्न करने लगे कि :-

बोलो इस्त्री री कुणु तेरी माता जी ओ।
कुणु तेरी माताये कुणे तेरे पिता जी ओ।।

हे नारी ! बोल कि तुम्हारी माता जी कौन है ? और तुम्हारे पिता जी कौन हैं ? उन दोनों की कुत्सित भावना को भांप कर अन्त में वह बोल उठी कि -

विष्णु बराड़ी-ये मेण्डूणे पिता जी ओ।
धरती माता-ये मेण्डूणे माता जी ओ।।

विष्णु वराह मेरे पिता जी और धरती माता मेरी जननी है।

सूरजा चन्दुराये मुंहे-मुंहे हेरी जी ओ।
सूरजा चन्दुराये मुंहे-मुंहे हेरी जी ओ।।

विष्णु वराह, विष्णु का एक अवतार माना जाता है जिन्होंने हिरण्याक्ष नामक दैत्य से धरती

की रक्षा की थी। सूरज और चन्द्रमा उस नारी की बात को सुनकर हक्का बक्का रह गए और एक दूसरे का मुंह ताकने लगे। उन्हें अब यह भी आभास होने लगा कि अपनी कुत्सित भावना के कारण जिसे हम बड़ा शिकार समझने लगे थे, वह तो अपने गोत्र की बहिन ही निकल आयी। अतः वे बड़े लज्जित हुए। अन्त में वे साहस बटोर कर अत्यन्त नम्र भाव से पुनः पूछने लगे कि-

राहुरे धारओ क्याये कामा करिला जी ओ।
राहुरे धारओ क्याये कामा करिला जी ओ ॥

हे भगिनी ! आप उस राहु राक्षस के घर क्या काम करती हैं ? वह बोलने लगी कि मैं प्रतिदिन-

नौपुरी तेषुणये नवे पूरी तुषुणा जी ओ।
नौपुरी तेषुणये नवे पूरी तुषुणा जी ओ ॥

नौ कमरों को बुहारती हूं और नौ कमरों की लिपाई पोताई करती हूं। सूरज और चन्द्रमा फिर पूछने लगे कि -

राहुरे धारेओ क्याये खाणा खायेला जी ओ।
राहुरे धारेओ क्याये खाणा खायेला जी ओ ॥

हे भगिनी ! आप उस राहु राक्षस के घर क्या-क्या खाना खाती हैं ? इस प्रश्न पर उसने उत्तर दिया कि :—

शिबराका कूटी-ये माण्डा पकायी जी ओ।
शिबराका कूटी-ये माण्डा पकायी जी ओ ॥

मैं चक़मक़ पत्थर को पीसकर उसका मांडा यानी परांठा पकाकर खाती हूं। बहिन की दिनचर्या और अखाद्य भोजन की बात सुनकर सूरज और चन्द्रमा की आंखें डबडबा गई। वे विपत्ति में पड़ी अपनी बहिन को तत्काल राहत देने का उपाय सोचने लगे, क्षण भर पश्चात्—

चन्दुरा भाईये अपुणी बौड़ी चीरी जी ओ।
चन्दुरा भाईये अपुणी बौड़ी चीरी जी ओ ॥

भाई चन्द्रमा ने अपनी जांघ को तुरन्त चीर लिया और जांघ के उस विदीर्ण कक्ष में बहिन को छुपाकर धरती, माता के पास ले आए।

पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ (यू०टी०)

गद्दी नृत्य एवं लोकनाट्य

O अमरसिंह रणपतिया

गद्दी जनजातीय लोक नृत्य एवं लोकनाट्य अपनी विशेषता रखता है। यहां के प्राकृत वातावरण, बहती नदियों, झरनों, कल-कल ननाद करते नालों और गहरी घाटियों और ऊंचे पर्वतों ने इसे निरंतर जीवित रखने का प्रयत्न किया है। यहां के व्यस्त जीवन ने, रात्रि के समय सामूहिक तौर पर इस कला से दिन भर की थकान को दूर करने के लिये अपने सम्वादों और नृत्य कला से दूर करने का सतत् प्रयास किया है।

यहां का जनजीवन एक दूसरे के सुख-दुःख की अनुभूति से नितान्त जागृत है। एक दूसरे की फसल को सामूहिक रूप से बटोरना, घास काटना, गृह निर्माण करना इत्यादि कार्यों में सभी सम्मिलित होकर एक दूसरे की सहायता करते हैं। इस दिन भर की थकान को वे रात के समय नाच-गान के मनोरंजन से दूर करते हैं। ऐसे समय पर यह जनजीवन रात को उस के घर एकत्रित होकर खान-पान करता है जिस के लिए सारा दिन कार्य किया था। यदि यह समुदाय उस व्यक्ति विशेष की सहायता न करता तो वह बेचारा अकेला अपने कार्य को कहां निपटाता। गृह निर्माता के समय दूर-दूर से लकड़ी के न्हास (बीस पच्चीस फुट लम्बा लकड़ी का शहतीर जिसे घर बनाने में प्रयोग में लाया जाता है) को खींचना एक आदमी का काम नहीं अतः सारा समुदाय ऐसे कार्य में सहायक होता है। दिन भर की खींच तान के बाद, रात को इस थकान को भुलाने का एकमात्र साधन लोक नृत्य और वाद्य है। ऐसे मौके पर कार्यक्रम 'अंचली' से आरंभ होता है। अंचली एक प्रकार का धार्मिक गान हैं जिस के साथ नृत्य भी चलता है। सर्व प्रथम चार व्यक्तियों की मंडली एक बड़े कमरे (ओबरी) में बैठ जाती है। इस मंडली के चारों व्यक्ति विशेष लोक-गायक होते हैं जो समय-समय पर ऐसे मौके पर गायन किया करते हैं। इन में एक ढोलक को पकड़ लेता है, दूसरा थाली को। थाली घड़े या पारी (छोटा घड़ा) पर रखी जाती है। घड़े या पारी में थोड़ा सा पानी भी डाला जाता है। अब दो व्यक्ति (ढोल वाला और उसका साथी) गायन आरंभ करते हैं और दूसरी टोली (थाली वाला और उस का साथी) उसे दोहराती है। ढोलक और थाली एक लय में बजते जाते हैं। अब क्रम चलता जाता है। अब एक या दो-दो नाचने वाले बारी-बारी से नाचते जाते हैं। दर्शक मंत्र मुग्ध इस क्रिया को देखता रहता है ऐसे समय विशेष वेष-भूषा की आवश्यकता नहीं रहती। प्रथम क्रम धीमी गति का होता है

परन्तु धीरे-धीरे गायन की तीव्र गति के साथ-साथ नृत्य भी तेज हो जाता है।

'अंचली' गायन प्रायः धार्मिक विषय का होता है। इस में शिव-पार्वती विवाह, रामायण और महाभारत के विषय लोक गीतों में गाये जाते हैं जिन के कुछ नमूने इस लेख के अंत में दिये जाएंगे।

कुछ गद्दी क्षेत्रों में घास काटने के कार्य को सामूहिक रूप से किया जाता है जिसे 'थाली' की संज्ञा से पुकारा जाता है। थाली के समय भी इस प्रकार की क्रिया दोहराई जाती है। कहीं कहीं खेती का कार्य भी सामूहिक रूप से किया जाता है। कार्य समाप्त होने पर रात के समय यही क्रिया दोहराई जाती है।

विवाह उत्सव पर भी "अंचली" गायन और नृत्य विशेष आकर्षण होता है। चम्बा में और विशेष कर गद्दी क्षेत्र में "नवाला" उत्सव मशहूर उत्सव है। जब दुल्हन के घर में रात को 'नवाला' उत्सव का आयोजन किया जाता है। रात को फूल की माला शिव जी की पूजा के लिये टांगी जाती है। माला के पास ही चार गायकों की मंडली बैठती है जिन्हें 'बंदे' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। शिव पूजन 'अंचली' गायन शिव-पार्वती के विवाह गाथा से आरंभ होता है। नर्तक पूर्व कथित ढंग से एक-एक और दो-दो के क्रम से नाचते जाते हैं। ढोलक और थाली की लय और गायक के मधुर स्वर से सारा जन समुदाय मंत्र मुग्ध रहता है। इसी प्रकार के गायन और नृत्य चौवर्षी के समय भी होते हैं। व्यक्ति के मरने के बाद चौथा वर्ष चौवर्षी के रूप में मनाया जाता है।

पुरुषों के अतिरिक्त स्त्री-नाट्य अलग सा होता है जिसे क्षेत्र विशेष के अनुसार "डंगी" और 'घुंघर' कहते हैं। गद्दी प्रथा के अनुसार स्त्री पुरुष के साथ नहीं नाचती। स्त्री नृत्य अलग सा होता है और प्रायः सामूहिक होता है जिसे पूर्वोक्त 'डुंगी' या "घुंघर" नाम दिया है। विवाह उत्सव, चौवर्षी, नवाला और अन्य जात्रा उत्सव के समय महिलाएं आंगन या खुले स्थान में एकत्रित होकर अपनी परम्परागत वेशभूषा में दायरे में घूमते हुए द्रुतगति से नृत्य और गायन करती हैं। गायन के लिये यह दो मंडलियों में विभक्त होती हैं। प्रथम मंडली गाने की कुछ कड़ियां गुन-गुनाती है तत्पश्चात् दूसरी मंडली उन कड़ियों को दोहराती है और नाचती भी जाती हैं। पांव की थिरकन और अन्य भाव भंगिमाएं देखने योग्य होती हैं। अभिनय साथ-साथ चलता है। बीच की नर्तकी अपनी दोनों ओर की नर्तकियों से क्रमशः अभिनय के लिए सम्पर्क बनाए रखती है। लगातार एक दूसरे के हाथ से ताली बजती रहती है। अन्य अभिनय भी आकर्षक होता है। यह स्मरण रखने योग्य है कि यह नृत्य विशेष परम्परागत वेशभूषा में होता है। इस में वेशभूषा को ढील नहीं दी जाती। आभूषण और पहरावा स्थानीय हुआ करता है। जिस में लुआंचड़ी, चूड़ीदार पाजामा, कढ़ाई किया हुआ रंगदार दुपट्टा, कमर में गात्री,(काला ऊनी रस्सा) आभूषणों में मांग पर चांदी का मान टिक्का जिसे चिड़ी कहा जाता है। गले में विभिन्न प्रकार की

चांदी और कपूरे की मालाएं जिन्हें डोड माला, जौ माला, मणका इत्यादि विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। कान में विभिन्न प्रकार के चांदी के झुमके, बालियां और कांटे पहने जाते हैं। पांव में पाजेब पहनी जाती है। इस प्रकार का नृत्य काफी लम्बा चलता है। जात्रा उत्सवों पर भी इसी प्रकार का नृत्य चलता है।

गद्दी समुदाय का दूसरा प्रसिद्ध पुरुष नृत्य सामूहिक नृत्य है जो खुले प्रांगण में जात्रा उत्सव के समय नाचा जाता है। इस नृत्य में विशेष परम्परागत वेशभूषा की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार का सब से प्रसिद्ध नृत्य 'छतराढ़ी' नृत्य है। जो छतराढ़ी जात्रा उत्सव के समय नाचा जाता है। छतराढ़ी जात्र, मणिमहेश मेले के दूसरे दिन आरंभ होती है और तीन दिन लगातार चलती रहती हैं। यह नृत्य भी तीन दिन लगातार चलता है। यह नृत्य दोपहर को दो-तीन घंटे चलता है। नर्तक दायरे में नाचना प्रारंभ करते है। वाद्य मंडली एक ओर ढोल, नगाड़े, शहनाई के साथ अपने वाद्य यंत्रों की धुन आरंभ करते हैं। इस धुन के साथ नृत्य मंडली द्रुतगति से अपना नृत्य आरंभ करती है। नर्तक सिर पर नोकदार ऊनी टोपी पहनते हैं जिस पर नील पक्षी की कलगी लगी रहती है। गले में रंगीन गुलाबंद और कंधे पर रेश्मी या ऊनी रंगदार शाल पहना जाता है। एक ऊनी चोगा जिसे 'चोली' कहते हैं, पहनते हैं। कमर में ऊनी काला रस्सा सा बांधा जाता है जो 'गात्री' कहलाती है। गात्री के साथ एक रंगदार बटुआ जिसे मंडूआ कहा जाता है बांधा जाता है। साथ ही लोहे का "रुणका" जिस से चकमक पत्थर पर रगड़ कर आग जलाई जाती हैं, बांधा जाता है। टांगों में चूड़ीदार पाजामा पहनते हैं।

आभूषणों में कभी-कभी कान में नंती (सोने की), गले में मालाएं और कलाई पर चांदी के कंगन जिन्हें कंगणू कहते हैं, पहने जाते हैं। पांव की हरकत एक साथ होती है जिस के लिये वाद्ययंत्र की धुन सहायक होती है। हाथ से आवश्यक अभिनय चलता रहता है ऐसा लगता है कि नर्तक ने कहीं स्कूल में विशेष प्रशिक्षण प्राप्त किया है। इस नृत्य की विशेषता है कि बिना लोक वेशभूषा के किसी भी नर्तक को नाचने नहीं दिया जाता, जिससे नृत्य की शोभा और विशेषता बनी रहती है।

नाचने के साथ-साथ वाद्य यन्त्रों में गाई जाने वाली लोक गीतों की कड़ियां लोक नर्तकों द्वारा दोहराई जाती हैं। छतराढ़ी नर्तकों को कुछ वर्ष पूर्व दिल्ली में छब्बीस जनवरी के दिन पुरस्कृत किया गया था। इसी प्रकार का भरमौरी नृत्य भी है जो भरमौर में भरमौर जात्रा उत्सव पर नाचा जाता है। वेश-भूषा लगभग छतराढ़ी सी है परन्तु सिर पर टोपी के स्थान पर सफेद साफा शोभा देता है जिस पर नील पक्षी की कलगी सजती है। इसी प्रकार अन्य जात्रा उत्सवों पर भी नृत्य किए जाते हैं।

स्त्रियों के सामूहिक नृत्य डंगी और घुंघर है जो अलग से स्त्री वर्ग के समूहों में नाचे और गाय जाते हैं। गद्दी जनजाति का तीसरा लोक नाट्य 'हड़नात्र' है जो विशेषकर पियूहर, वस्सु, लिलह और साहो के गद्दी क्षेत्र में प्रसिद्ध है। यह हिमाचल के अन्य क्षेत्र में खेले जाने वाले करियाला का दूसरा रूप है। होली के दिन किसी देव मन्दिर में इसके पात्र अपने आपको चन्द्रोली, हिरण, खप्पर और जोगी तथा 'गद्दी विशेष' के रुप में सजाते हैं। चन्द्रौली एक पुरुष पात्र है जो अपने आप को स्त्री की वेशभूषा में सजाता है और नृत्य में भाग लेता है। खप्पर पुरुष पात्र मुखौटे पहनते हैं तथा नाचते और गाते हैं। जोगी भी पुरुष पात्र है जो अपने आप को जोगी का रूप धारण करता है। गद्दी-यह विशेष पात्र है और अपने सम्वादों द्वारा लोगों को हंसाने का काम करता है। दूसरे शब्दों में यह विदूषक पात्र है और सारी झांकी का आकर्षण है।

हड़नात्र के पात्र वाद्य यात्रियों के पीछे-पीछे जलूस में चलते हैं अन्य लोग उनके पीछे चलते हैं तथा घर-घर जाकर उस रात नाचते और गाते है। प्रातः होते ही यह उत्सव उसी देव स्थान पर सम्पन्न होता है जहां से यह आरम्भ हुआ था। इस प्रकार का अन्य लोक नाट्य झांकी है जो होली के उत्सव से आरम्भ होकर आठ दिन तक चलता है इसके पात्र भी इसी प्रकार के होते हैं। ऐसे लोक नाट्यों में पुरुष ही शामिल होते हैं। औरतें जलूसों और पात्रों में सम्मिलित नहीं होती। घर-घर जाने से जो अन्न और धन प्राप्त होता है किसी निश्चित दिन सहभोज आयोजित कर खाया जाता है उस दिन भी पात्र मुखौटे पहनकर नाचते और गाते हैं। चन्द्रौलियां भी साथ नाचती हैं।

गद्दी नाट्य का एक अन्य रुप छतराड़ी जात्रा के आरम्भिक दिन देखने में आता है इस दिन छतराड़ी के मन्दिर में स्थित बटुक महादेव की रथ यात्रा निकाली जाती है। इस यात्रा के आगे-आगे चार पुरूष मखौटे पहने चलते हैं और मन्दिर के प्रांगण में नृत्य करते हैं। उनके साथ ही एक पुरुष स्त्री वेश में मखौटा पहनकर नृत्य करता है। मखौटेधारी स्त्री शक्ति का रुप मानी जाती है तथा अन्य मखौटेधारी पुरुषों को राक्षस का रुप माना जाता है। नृत्य के समय मखौटेधारी स्त्री द्वारा मखौटेधारी पुरुषों को एक-एक कर धराशाई किया दर्शाया जाता है। जलूस में यात्रा के समय उन मखौटेधारी राक्षस पात्रों को परिहास के लिए बिच्छूबुटी के गटठों से पीटा जाता है। नृत्य के समय वे मखौटेधारी स्त्री को एक-एक कर प्राप्त करने का प्रयत्न भी करते है। स्त्री वेश में मुखौटेधारी पुरुष राक्षसों से जूझता दिखाया जाता है। नाटकीय रंग मंच का यह प्रारम्भिक रुप होगा जिससे सुसंस्कृत समाज में नाटक का आधुनिक रूप उभरकर सामने आया होगा। कुछ गाने जो पुरुषनर्तकों और महिलाओं द्वारा नाचते समय गाये जाते हैं इस प्रकार हैं :—

पठड़े बहूरिया हेड़िया शिकारिया
इसा हरनी जो मत मारे हो।

जैसी जोड़ी मेरी, तैसी जोड़ी तेरी
ऐसो जोड़ी इसा हरनीरी हो।
झम्बिया पलीता, होइया गड़ाका
इसा हरनी जो मारे हो।
इसा हरनी रा तु मास न खाना
ए ता हरनी पैर भारी हो।

इस गाने को युवक और युवतियां अपने नृत्य के समय समान रुप से गाते हैं। गाना मर्मस्पर्शी है। प्रेमिका अपने प्रेमी से प्रार्थना करती है कि हे शिकारी (हेड़=शिकारी, हेड़िया=शिकारिया) इस हिरनी को मत मारो। यह हमारी तुम्हारी तरह हिरनी और हिरन का जोड़ा है। बार-बार आग्रह करने पर भी शिकारी ने गोली दाग ही दी। तिस पर भी प्रेमिका उससे प्रार्थना करती है कि इस हिरनी का मांस न खाओ क्योंकि यह गाभिन (गर्भधारे है) इसी तरह गीत की कड़ियां लम्बे गीत के रुप में चली जाती हैं।

नीचे लिखे गाने को नर्तक नाचते समय सम्वाद के रुप में गाते हैं ;-

बहन : (जो ससुराल में यातनाएं सह रही है अपने भाई से कहती है)
पंजभारे हो अब्बे त्रंभड़ीरे ग्रोड़े, सेइयो घरे बोली देणा हो।
हेरा बो भाइयो पीट्ठी केरे हाल, सेइयो घरे बोली देणा हो।

भाई : पीट्ठी तेरी जो अंऊ घघरु लेई देला, सेइयो घरे मत बोलणा हो।

बहन : हेरा बो भाइयो मेरे पैर डुरे हाला एइयो घरे बोली देणा हो।

भाई : पैरा तेरे जो मोछड़ लई देला, सेइयो घरे न बोलणा हो, इत्यादि।

बहन अपने ससुराल की दुःख भरी कहानी सुनाती है। भाई उसको कहता है कि वह उसके लिए घघरु सिला देगा और नए जूते भी ले देगा अतः वह अपनी माता से मायके जाकर यह दुःख कहानी न सुनाए। माता यह सुनकर दुःखी होगी। इसी प्रकार यह गाना भी कई कड़ियों में लम्बा चला जाता है। यह गाना महिलाओं द्वारा ही गाया जाता है। एक अन्य सम्वाद इस प्रकार है :—

पति : मैं तिज्जो पुछदा नाजो मेरिये,
सच्च-सच्च दस मेरे नाल गल बल माला कुनी भला दित्ती हो
चाला भला डोरा कुनी बला दित्ता हो।

पत्नी : सच्च ता गलाणा हो कन्दा सुरगा जो जाणा जाके अपणे बापू जो पुछ
गल बल माला कुनी दित्ती हो मेरी जान, चोला बला डोरा कुनी बला दिता हो
मेरी जान।

यह गाना भी काफी लम्बा चलता है। एक विरही जो अपनी पत्नी को घर रख जाता है और स्वयं कहीं नौकरी पर चला जाता है और काफी अर्से के बाद वापस आता है तो उसे शक की दृष्टि

से देखता है और उसे एक-एक कपड़े और आभूषण के विषय में पूछता जाता है कि वे सब उसे किस ने दिये हैं। उस की प्रेमिका (पत्नी) एक-एक का उत्तर देती है।

यह गाना पुरुष और महिला नर्तकों द्वारा समान रूप से गाया जाता है। निम्नांकित गाना भी सम्वाद के रूप में बैशाख मास के आस-पास गाया जाता है जब विवाहित ललनाओं को "बसो" त्यौहार की याद आती है और पीहर जाने की उदासी छा जाती है। यह 'घुरेही-गाना' 'डंगी' नृत्य करते समय आम गाया जाता है। इसे 'वरपेड़ी' के नाम से जाना जाता है।

लड़की :— बसन्दु ता फुल्ले माय धामी -धूमी रित भइया संधड़ौणी हो !
अम्मा ता मेरिए कुण त्यौहार आया हो !

मां :— धीय तू मेरिए बसोआं त्यौहार आया हो

लड़की :— अम्मा तू मेरिये बापू जो सादा भेजे हो

मां :— बापु ता तेरा धीय चम्बे चाकरी हो-अप्पु आणा अप्पु जाणा हो।

लड़की :— अम्मा ता मेरिए मेरे भाई जो सादन भेजे हो

मां :— भाई ता तेरा धीए निक्का याणा हो
अप्पु आणा अप्पु जाणा हो...इत्यादि...!

यह गाना भी बाद-सम्वाद में काफी देर तक चलता है। गाने के मार्मिक स्वर सारे वातावरण को बहला देते हैं।

इसी प्रकार अन्य कई गाने विरह और बिछोह के गाए जाते हैं जिन पर एक अलग सी पुस्तक लिखी जा सकती है।

यह गाना भी केवल महिलाओं द्वारा गाया जाता है।

—गांव व डाकखाना प्रीणा,
वाया मैहला, जिला चम्बा (हि० प्र०)

जमटा क्षेत्र में विवाह प्रथा

O बाबू राम

संसार में विवाह अवश्य ही होते हैं। हर क्षेत्र में विवाह करने का ढंग अलग-अलग होता है। जमटा क्षेत्र में विवाह करने की रीति का वर्णन निम्नलिखित है :—

सगाई :—लड़के का पिता लड़की के पिता के घर लड़की की बात-चीत करने जाता है और अपने साथ एक घी का लोटा ले जाता है। अगर वे सहमत हो जाते हैं तो पण्डित से लड़के तथा लड़की के जन्म पत्र मिलाए जाते हैं। अगर पण्डित कहता है कि वह ठीक मिले हैं तो सगाई पक्की हो जाती है और यदि नहीं मिलते तो नहीं होती। जब जन्म पत्र मिल जाते हैं तो लड़की के माता-पिता लड़के वाले से सगाई मांगते हैं जिसमें कपड़े का सूट, शक्कर, मेंहन्दी, मेवे, जूता तथा एक घी का लोटा होता है। इस प्रकार की सगाई दिवाली, रियाली, माघ का त्यौहार तथा बिशु के त्यौहार को लड़के का पिता लड़की के मां-बाप के घर ले जाता है।

विवाह की निश्चितता :— यह लड़की के मां-बाप पर निर्भर करता है कि लड़की का विवाह करना है परन्तु आमतौर से जब लड़की की आयु 16 वर्ष लड़के की आयु 18 वर्ष हो जाती है तो लोग विवाह कर ही देते हैं। जब विवाह करना होता है तो लड़की का पिता तथा लड़के का पिता पण्डित के पास जाते हैं और विवाह की तारीख निश्चित कर लेते हैं। उस समय दोनों बाप सवा पांच-पांच रुपए पण्डित को देते हैं तथा मिठाई बांटते है। विवाह के सब काम करने का अलग-अलग समय देखा जाता है।

विवाह में सबली:— जिस दिन शादी निश्चित करते हैं उस दिन एक- क सबली भी छांटी जाती है जो विवाह के सब काम करने के लिए पहला हाथ लगाती है। उस को इस प्रकार के काम करने पडते हैं जैसे वटणा मलना, कहीं पर लिपाई करना, दुपट्टा रंगना, बरी का सामान बांधना आदि।

विवाह समय: इस क्षेत्र में आमतौर से विवाह चार दिन तक चलता है परन्तु अब कुछ लोग चार दिन की बजाय तीन दिन में ही पूरा कर लेते हैं। पहले दिन (नधार) यानी रिश्तेदार, मित्र तथा सगे सम्बन्धी बुलाए होते हैं। दोनों घरों में मुख्य मेहमान दुल्हा तथा दुल्हन के मामा

होते हैं। इनका खूब आदर सत्कार किया जाता है। जब वे आते हैं तो उन्हें लेने के लिए कुछ दूर तक जाते हैं। औरतें एक गीत गाती हैं: —

ऊंची-ऊंची टीवटी मैं चढ़-चढ़ देखूं, जी-जी
कहां सी आए मेरे माए जाए बीर ।

जब वे घर पहुंच जाते हैं तो भाई यानी दुल्हन तथा दुल्हा के मामा अपनी बहन को टीका करते हैं और एक कपड़े का सूट देते हैं। जब वह टीका करता है तो उस समय एक गीत गाया जाता है: —

आजे भाई बहणा के आए जी,
करेलो टीका बिन्दी बौहार ।

इसके पश्चात् शाम को भोजन के बाद रात को विभिन्न प्रकार की हंसी उड़ाकर उन्हें खुश रखा जाता है ताकि मेहमान नाराज न हों। दुल्हा तथा दुल्हन के मामा को उनके बाप तम्बाकू के पेड़े बनाकर देते हैं और उनके साथ खूब हंसी उड़ाई जाती है। दुल्हा का मामा अपने साथ बकरा लाता है और जिस दिन बारात जाती है उस दिन उसे काटा जाता है। जिस दिन बारात जाती है उस दिन का पूरा खर्च (भोजन का) मामा की तरफ से होता है। तथा जिस दिन बारात दुल्हन के पिता के घर आती है उस दिन का खर्च दुल्हन का मामा देता है। जो गरीब होते हैं वे 51 या 101 रुपये शान्त वेदी जिसे कहते हैं देते हैं। अगर वो यह भी न कर पाएं तो लोग अच्छा नहीं मानते।

दुल्हा का पहनावा:— नधार वाले दिन दुल्हा को बान बटणा लगाकर सात बार एक मिट्टी के घड़े में पानी डालकर नहलाया जाता है इसके पश्चात् पूजन होता है। और दुल्हा को कपड़े पहनाए जाते हैं। इस समय गीत गाया जाता है: —

बाना मारा हे लवेला जी रे,
कपटे पहने ना जाणेदा दा ।

इस अवसर पर दुल्हा को मुहूर्त के सिले हुए कपड़े पहनाए जाते हैं जिसमें चूड़ीदार पाजामा कमीज़ तथा **शेरवानी** (लम्बा कोट) पहनाया जाता है सिर पर दुपटा बांधने के पश्चात् **सेहरा** बांधा जाता है। दुल्हा को सेहरा बांधने से पहले सेहरे को एक बच्छड़े के सिर में लगाते हैं और फिर दुल्हा के बांधते हैं और उस बच्छड़े को पण्डित को दे दिया जाता है। अब जब दुल्हा को सजा दिया होता है तो उसकी मां उसे उस दिन जिस दिन उसका **दशूठन** हुआ था वाले दिन का पहनाया हुआ कपड़ा दिखाती है जिसका मतलब यह होता है कि बेटा तू भी कभी इतना था और आज व्याहने चल रहा है तो दुल्हा अपनी मां को कुछ रुपए देता है। अब सभी उसकी बहनें, बुआएं तथा चाचियां, ताईयां व आए हुए मेहमान टीका करते हैं। सभी बहनों तथा बुआओं को एक-एक सूट टीके के बदले देना पड़ता है।

विदाई: - दुल्हा को पालकी में बैठाकर ले जाया जाता है। बारात जब घर से चलती है तो पहले पण्डित पालकी में बैठता है और थोड़ी सी दूरी पर उसे उतार देते हैं और वहां तक दुल्हा का मामा उसेउठाकर ले जाता है और फिर उसको बैठाते हैं। सभी आमन्त्रित घर से एक-एक या दो-दो आदमी बारात के साथ बाराती बन कर जाते हैं परन्तु औरतें कोई नहीं जाती वे घर पर किस्म-किस्म के पुड़वे (नाच गाने) करती हैं। जब बारात विदा होती है तो पहला गाना यह गाती हैं: -

आज मारे बधाई शुणो री बेड़े वालियो,
नसो अम्मा बेच के हमने बड़े-बड़े लड्डू खाए,
शुणों री बेड़े वालियो।

दुल्हन के पिता के यहां बारात को ठहरने के लिए अलग जगह बताई जाती है जिसे यहां की बोली में टट्ठा कहते हैं। बारात के टट्ठे में पहुंचने से पहले नाई दो लोटे में पानी भर कर कुछ दूर लेकर जाता है और उनके आगे-आगे टट्ठे तक चलता है। यह शुभ के लिए माना जाता है। तथा बाराती इसमें कुछ पैसे डालते हैं। जब बारात अपने स्थान पर पहुंच जाती है तो वहां पर औरतें उनको एक गीत गाती हैं:—

ये बाराती आए हार के नी,
बैठे टांग पसार के नी,
दे दो मारी आरशी।

दुल्हा वाले तथा दुल्हन वाले की आपस में मिलनी किस तरह होती है: —सभी बाराती जब निश्चित स्थान पर बैठ जाते हैं तो दुल्हन के घर से लोग उस जगह जाते हैं जहां बाराती होते हैं। उनमें सबसे आगे नाई एक थाल में नारियल, एक कपड़ा तथा इसमें कुछ चावल और शक्कर रखी होती है उसके पीछे पण्डित चलता है तथा तब सब लोग जो दुल्हन के बाप के यहां आए होते हैं टट्ठे तक चलते हैं। वहां पर दोनों पक्षों की आपस में कोई बातचीत नहीं होती। दोनों तरफ से एक-एक पण्डित होता है वे दोनों अपना पूजन करते हैं और जब पूजन समाप्त हो जाता है तो दुल्हा तथा दुल्हन के पिता खड़े होकर गले मिलते हैं उसके पश्चात् सभी लोग आपस में बातचीत करते हैं तथा मिलनी करके वापिस चले जाते हैं।

जिस घर में दुल्हन होती है उस दरवाजे पर **पाजे** (एक वृक्ष नाम) के खम्बों के ऊपर तिल्लू से मण्डप बनाया जाता है। इस मण्डप में दुल्हन के पिता की ओर से मिट्टी के सात दीवे परान्दे में बांधकर लटकाते हैं तथा दुल्हा की तरफ से सुहाग पूड़ा जिसमें एक खास किस्म का चमकीला पीले रंग का कागज जिस पर कूंगू से ओऽम लिखा होता है, भी होता है।

जब मिलनी हो जाती है तो दुल्हा को मण्डप छूने के लिए बुलाया जाता है। उसको वह पालकी में बैठकर अवश्य ही छूना पड़ता है। छूकर उसे मण्डप के नीचे खड़ा होना पड़ता है।

यहां पर पण्डित परान्दे से उसकी पैमाइश करता है उन परान्दों को दुल्हन के पास दे दिया जाता है जिनको उसे एक वर्ष तक अपने बालों की चोटी में बांधना पड़ता है। दुल्हन की मां दुल्हा को टीका लगाती है तथा एक कपड़े का सूट देती है।

साई सगाई: मण्डप आदि का काम हो जाने पर दुल्हा तो वापिस टट्ठे में चला जाता है। दुल्हा का बाप तथा कुछ अन्य व्यक्ति उसके साथ वहीं पर उस सामान को दिखाते हैं जो उन्होंने दुल्हन के लिए लाया होता है। इस अवसर पर औरतें गाती हैं:—

जी क्या कुछ मोल ल्याया था।
जी कपड़े स्वांय ल्याया था।

इस प्रकार जो भी कुछ उन्होंने लाया होता है जैसे जेवरात, कपड़े आदि दिखाते हैं। जेवरात में सोने का टीक्का, बालियां, तिलती, अंगूठी, नत्थ आदि होते हैं तथा चान्दी के झांझर, पाजेब (पैरों में लगाने की), कंगन, छलबले (हाथ में बांधने के), अंगूठी, बालियां, चाक (चोटी पर लगाने का) आदि होते हैं तथा कपड़ों के तीन सूट लाए जाते हैं। इस प्रकार से जो सामान दुल्हन को लाया जाता है उसे सभी के सामने खोलकर दिखाने को साई सगाई कहते हैं।
फेरे: फेरे-फेरना यहां पर विवाह का सबसे मुख्य काम समझा जाता है। पहले दुल्हन का बाप अपनी लड़की का दान दे देता है और फिर अग्नि के चारों तरफ दुल्हा-दुल्हन सात बार चक्कर लगाते हैं। इस समय भी एक गीत गाया जाता है:—

सूले-सूले सू लाड़िये नी,
फेरा बेटी पहला आया।

इस प्रकार यह गीत पहला, दूसरा तथा सात फेरे हो जाने तक चलता है।

इस अवसर पर दुल्हन के मुंह पर एक चमकीले पीले रंग का कागज बांधा जाता है जिसे **सावड़ी** कहते हैं। जब फेरे यानी सात चक्र अग्नि के समाप्त हो जाते हैं तो दुल्हा-दुल्हन के मुंह पर से सेहरा मावड़ी दुल्हन की मां खोलती है जिनको लेकर दुल्हा अपनी सास के पांव पड़ता है। अन्तिम समय दुल्हन को उसी पालकी जिसमें दुल्हा को लाया होता है में बैठाकर विदा किया जाता है उस अवसर पर एक विदाई गीत गाया जाता है—इसे औरतें आपस में गाती हैं एक पक्ष लड़की की तरफ से गाता है तथा दूसरा पक्ष बाप की तरफ से गाता है:—

बाप:—तेरे महलां दे अन्दर है,
बेटी घर जाया आपणे।
बेटी:—मेरे महलां दे अन्दर है,
बापू मेरी अम्मा रोए।

बापू:—तेरी अम्मा नों चुप करूंगा,
बेटी घर जाया आपणे ।

इस प्रकार जब वे उसकी सब बात मान लेते हैं तथा सवाल जबाव हो जाते हैं तो अन्त में जब लड़की सब कुछ मना लेती है तो मजबूर होकर उसे डोले (पालकी) में बैठाते हैं तब लड़की गाती है:—

बेटी:—तेरे बागां ते अब चिड़ियां,
बापू आज उड़ चलियां ।

इस प्रकार लड़की को अपने बापू का घर छोड़ना पड़ता है।

जब वह दुल्हा के घर पहुंच जाती है वहां पर दुल्हा-दुल्हन को पहले एक ग्राम के देवता पर ले जाते हैं और फिर एक खास पानी जहां से हर रोज इस्तेमाल के लिए लाया जाता है पर ले जाते हैं।

इस प्रकार इस क्षेत्र में शादी होती है। इसके अतिरिक्त जिन नवयुवतियों के पति मर जाते हैं या तलाक दे देते हैं वे दोबारा शादी करते हैं जिसे यहां पर **झाझड़ा** कहते हैं। इसमें यानी दोबारा शादी में सभी काम पहले की तरह होते हैं परन्तु फेरे नहीं होते।

शादी करने के लिए गोत्र:—अपने ही गोत्र से शादी नहीं करता जैसे चौहान, चौहान गोत्र से शादी नहीं करेगा। इसी प्रकार जाती प्रथा के आधार पर भी शादी होती है। एक जाति दूसरी जाति से विवाह नहीं करती, अपनी ही जाति तथा अलग गोत्र से शादी होती है।

इस प्रकार यहां पर शादी होती है।

ग्राम जैतग, डाकघर जमटा,
तहसील नाहन, ज़िला सिरमौर,
हिमाचल प्रदेश ।

बलिदान

O सुरेन्द्र शर्मा

यह सत्य घटना कुल्लू ज़िले में निरमण्ड ब्लॉक के देथ्वा गांव की है। कहते हैं किसी समय वहां पर अमीर ठाकुर की बस्ती थी, जो आज भी बिखरे रुप में वहां पर है। यह लगभग अठ्ठाहरवीं सदी की बात है। जिस ठाकुर की लड़की की यह कहानी है, वह वास्तुकला का प्रेमी था। वह एक ऐसी गृह निर्माण की योजना बना रहा था जिससे मरने पश्चात् भी लोग उसे याद करते। इस योजना को साकार करने के लिए उसने परले सिराज के उस वक्त के मशहूर थावी (लकड़ी का मिस्त्री) को बुलाया। ठाकुर ने उसे अपनी योजना से अवगत करवाया और एक सुन्दर कोठीनुमा घर बनाने का आदेश दिया। थावी ने ठाकुर के सपने को साकार करने का वचन दिया पर इसके साथ ही थावी ने ठाकुर से वचन लिया कि जब मैं कोठी का काम पूरा कर लूंगा तो मेरे पारिश्रमिक के तौर पर मुझे मेरी मनचाही चीज दी जाये। ठाकुर ने यह बात मान ली और मिस्त्री को उसकी मनचाही वस्तु देने का बचन दिया।

कुछ समय पश्चात् मिस्त्री ने ठाकुर की पसन्द की कोठी तैयार करके दे दी। ठाकुर अपने सपने को साकार होता देख बड़ा खुश हुआ। उसने मिस्त्री को अपने वचन की याद दिलाई। मिस्त्री ने ठाकुर से उसकी अत्यन्त रुपवती कन्या का हाथ उसके हाथ में देने को कहा। ठाकुर यह शर्त सुनकर हैरान हो गया। कहां वह सोच रहा था कि मिस्त्री सोना, चांदी या रुपयों की शर्त रखेगा परन्तु इस शर्त ने तो उसको बिल्कुल ही तोड़ दिया। ठाकुर की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। कैसे अपनी मासूम लड़की का हाथ एक गैर जाति के बजुर्ग के हाथ में दे दे। ठाकुर धर्म संकट में पड़ गया। उधर लड़की को जब अपने पिता की परेशानी का पता चला तो सोच-विचार कर वह इस नतीजे पर पहुंची कि कुछ भी हो उसे अपने कुल की रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि अगर उसके पिता यह वचन तोड़ देते हैं तो उनके कुल में धब्बा लगता है। उसने अपने पिता को अपने निश्चय से अवगत कराया। पिता व बजुर्गों के लाख समझाने पर भी उन्हें उसे मिस्त्री के साथ भेजना ही पड़ा। विदाई के समय रिवाज के अनुसार लड़की की गाची (कमर के गिर्द बांधा कपड़ा) में मोड़ी (भुन्ने गेहूं, मक्की के दाने) व दाची (दराटी) डाल दी और उसे विदा कर दिया।

रास्ते में गाड़ा गुसेनी जगह पर मिस्त्री आराम करने बैठ गया। लड़की किसी त ह उसके चंगुल से छुटकारा पाना चाहती थी उसने मौके को ताका और पेशाब करने का बहाना बनाकर वह खड्ड की तरफ चली गयी। पलभर को उसने मुक्ति की सांस ली और फिर अपने इष्ट व मां बाप का स्मरण करके वह नदी में कूद पड़ी।

कुछ अर्से बाद गाड़ा गुसैंणी के लोग दोषे दा (दोष की दर्द) से पीड़ित रहने लगे। जब उन्होंने कारण जानना चाहा तो वह लड़की एक आदमी में प्रकट हो गई। उसने उन लोगों से अपनी मूर्ति व पूरा रथ बनवाने को कहा, क्योंकि वह गाड़ा गुसैंणी की देवी का रुप धारणकर चुकी थी। रथ में आने के बाद वह हर साल अपने मां-बाप के गांव जाती है। अब भी जब वह गांव में आती है तो सब की आंखे नम हो जाती हैं। देवी का गुर जिसमें देवी प्रकट होती है रोता है। विदाई के समय लोग उसी पुराने मौड़ी व दाची वाले ढंग से उसकी विदाई करते हैं।

लड़कियां अपने बालों को लम्बा करने के लिए देवी की मनौती करती हैं। मनौती के स्वरुप लड़कियां देवी को कई महीने तक घी में रखा पवित्र ढंग से सम्भाला हुआ शैल(घास से निकाला गया धागा) देती हैं। कहते हैं लड़कियां जितने पवित्र ढंग से रखा लम्बा शैल देवी गाड़ा गुसैंणी को देती हैं उसके उतने ही लम्बे बाल हो जाते हैं।

गांव निरमण्ड, वाया रामपुर,
जिला कुल्लू, (हि०प्र०)

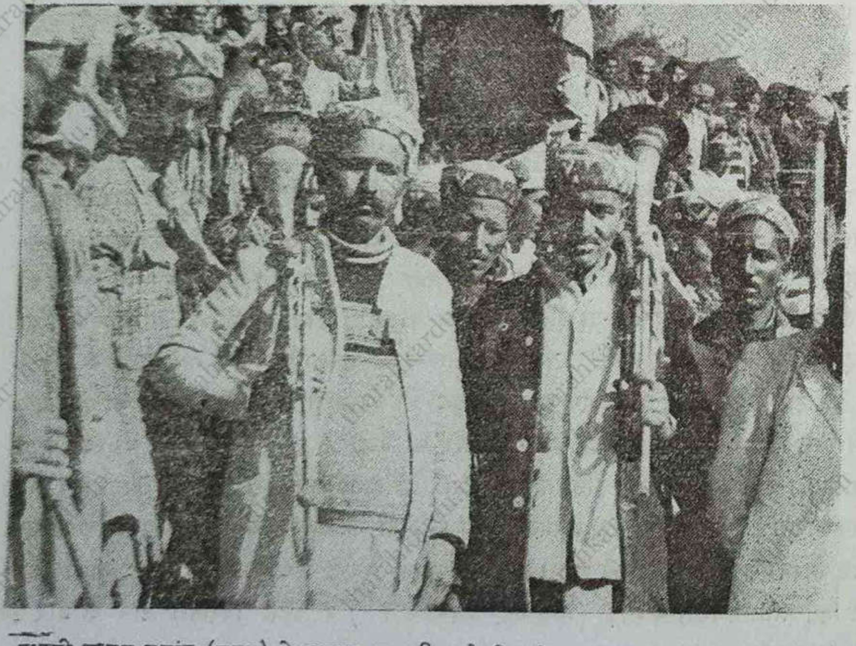

हारंगी उत्सव कमांद (कुल्लू) के अवसर पर मन्दिर से निकाले गए कुछ **प्राचीन वाद्य-यन्त्र**

आराध्य देवी–भीमा काली

O नीना भण्डारी

सराहन में मां भीमा काली का मन्दिर अपनी प्राचीन गरिमा व भव्यता से मन को भाव-विभोर कर देता है। इस मन्दिर में जाकर मन को एक तृप्त आत्मिक शान्ति सी मिलती है जोकि इस स्थान के विलक्षण धार्मिक वातावरण से उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

यह मन्दिर शताब्दियों के उतार चढ़ाव के बावजूद अपनी जिस आभामयी गरिमा को लिए खड़ा है, यह अति पावन व पूजनीय है। वह मां जो तेजोमयी है, कान्तिवान है, शक्तिवान है, शीलवान है, धैर्यवान व सम्पूर्ण सृष्टि रचयिता है उसी शक्ति भीमा काली का मन्दिर आध्यात्मिक प्रेरणा का स्त्रोत हो सकता है। नाशवान जगत पर अखण्ड सत की विजय का यह एक उदाहरण है जो सदियों तक जीवित रहता है।

प्राचीन समय में महिषासुर चण्ड-मुण्ड रक्तबीज शुंभ निशुंभ नामक अनेक दैत्य दानव राक्षसों ने शिवजी की आपार तपस्या करके बहुत नाम तथा बरदान प्राप्त किया। वे अपनी शक्ति से देवताओं को परास्त कर नाना प्रकार से ऋषि मुनियों व देवताओं को सताने लगे अन्त में उन दुष्टों से दुःखी होकर देवताओं ने सौ वर्ष तक युद्ध किया। देवताओं सहित राजा इन्द्र महिषासुर से परास्त हो गये। महिषासुर इन्द्र सहित सभी देवताओं को निकाल-कर स्वयं इन्द्रासन पर बैठ गया। सभी देवता इन्द्र सहित बेघर मृत्यु लोक में विचरण करते रहे। तब शिव, ब्रह्मा जी सहित अन्य देवगण भगवान विष्णु के पास जाकर दुःखित मन से अपनी आपदा सुनाने लगे। तब ब्रह्मा, विष्णु व महेश के अत्यन्त क्रोधित मुख मण्डल से अलग तेज प्रकट हुआ और अन्य देवताओं के शरीर से भी तेज निकल कर एक जगह एकत्रित होने लगा वह देवोमय मण्डल परम प्रकाश देता हुआ एक स्त्री के रुप में बदल गया। उस तेजोमय स्त्री को भगवान शिव ने त्रिशूल, विष्णु भगवान ने सुदर्शन चक्र, इन्द्र ने दक्षु, प्रजापति ब्रह्मा जी ने रुद्राक्ष की माला दी और सूर्य से प्रचण्ड किरणें उस देवी के रोम-रोम में भर दी। अन्य सभी देवताओं ने उस तेजोमयी देवी को अस्त्र-शस्त्र व सर्व अलंकारों से सुसज्जित किया और सम्पूर्ण शक्तियों से सम्मा-नित वह तेजोमयी शक्ति सिंह पर सवार होकर गर्जना करती हुई महिषासुर की ओर लपकी और महिषासुर पर तीव्र प्रहार करके उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये शेष असुर भाग गये। सभी देवताओं ने देवी की जयजयकार करी। तब देवी ने उनसे वरदान मांगने को कहा। देवता बोले हे जगत धात्री माता

जब-जब असुरों का उत्पात बढ़े, हम सब पर आपत्ति पड़े, तू हमारी रक्षा करना। देवताओं की प्रार्थनासुन देवी ने कहा हे देवगण विश्व के कल्याण हेतु जो वर मांगना हो वह मैं देने को तैयार हूं। तब देवताओं ने कहा हे मां जैसे इन दुष्टों को मारकर हम सबकी रक्षा की है वैसे ही भविष्य में हमारी रक्षा करना। तब देवी ने कहा देवस्तव मनवन्तर के अठाईसवें युग में शुम्भ-निशुम्भ फिर पैदा होंगे। उस समय यशोदा के गर्भ से पैदा होकर विन्ध्य वासिनी नाम से दोनों को नष्ट करुंगी। फिर पृथ्वी पर रूद्र रप धारण करके वेप्रधिन्त नामक असुरों का वध भ्रमण करने से मेरे दान्त लाल हो जायेंगे तब ऋषि गण मुझे रक्त दन्ति के नाम से पुकारेंगे फिर सौ वर्ष तक अवर्षणा के कारण मुनि मेरी स्तुति करेंगे-तब मैं बिना गर्भ के प्रकट होकर सौ नेत्रों से देखूंगी तब मैं देवी शताश्री नाम से जानी जाऊंगी उस समय वर्षा होने तक अंग से जीवन दायक शाकों को उत्पन्न कर सब प्राणियों की रक्षा करूंगी। तब मेरा नाम शाकुम्भरी होगा। उसी स्थान पर दुर्गा नामक असुर के वध करने से मेरा दुर्गा नाम पड़ेगा। हिमालय पर्वत पर उत्पात करने वाले राक्षसों के लिए अतिविशाल रूप धारण करने से मेरा नाम भीमा देवी होगा। वही तेजोमयी शक्ति भीमा काली के नाम से जानी जाने लगी। सभी देवी शक्तियां उसी तेजोमयी आभामण्डल के रूप हैं।

भीमा काली के नये मन्दिर का निर्माण 1962 में भूतपूर्व नरेश श्री राजा पद्म सिंह जी ने कियाथा अब उसका प्रबन्ध मन्दिर कमेटी के पास है। यह मन्दिर समुद्र तल से 8000 फुट की ऊंचाई पर स्थित है। श्री भीमा काली मन्दिर में रघुनाथ जी और श्री नरसिंह जी के मन्दिर भी हैं। यह मन्दिर भी अपनी वास्तुकला और मूर्तिकला के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति के परिचायक हैं।

इस मन्दिर में प्रतिवर्ष दोनों नवरात्रों पर देवी की अलौकिक शक्ति से खींचे भारी संख्या में लोग दर्शन व पूजा करने आते हैं विशेषकर असोज नवरात्रों पर विजय दशमी से त्रयोदश तक दशहरे का मेला मनाया जाता है।

संसार में भौतिक उन्नति के लिए भौतिक वादी कुछ भी कहे यह सत्य है कि जीव की आध्यात्मिक उन्नति ईश्वर साक्षात्कार के बिना सम्भव नहीं है। असत् रूपी माया का भौतिक सुख के लिए प्रयोग चाहे कर लें, लेकिन यह माया संसार में सबको फंसा कर दुःखी ही बनायेगी। यह अकाट्य सत्य है कि अखण्ड सत ही देवी सम्पत्ति है। यह पथ से भटके साथियों को राह तो अवश्यमेव दिखायेगी।

द्वारा अतिरिक्त जिला
दण्डाधिकारी सोलन (हि. प्र.)

मुख्यतया कबीर के सन्दर्भ में गोरखनाथ की विचारधारा का हिन्दी निर्गुण साहित्य पर प्रभाव

O डॉ० वेद प्रकाश अग्नि

तत्व-चिन्तन या विचार-दर्शन किसी भी बृहत्तर समाज की युग युगीन - चेष्टाओं, प्रयासों तथा संकल्पात्मक अनुभूतियों, विधेय तथा निषेधात्मक व्यापारों का मूल प्रेरणास्त्रोत हुआ करता है। बिना विचार-दर्शन के कोई भी समाज-रचना अधूरी और किसी भी जाति का जीवन छूंछा तथा अपूर्ण ही नहीं हुआ करता अपितु उसे वह सुदृढ़ आधारशिला उपलब्ध ही नहीं होती जिस पर किसी सभ्यता और संस्कृति के पृथक अस्तित्व का भव्य-प्रासाद निर्मित हुआ करता है।

किन्तु विचार-दर्शन मात्र कल्पनात्मक तथा बौद्धिक प्रक्रिया नहीं है। एतद्विषयक चिन्त-शक्ति या चैतन्य के अभिव्यंजन अथवा निरावरणित या विस्फारित होने का साधन केवल क्रियात्मक साधना है। क्रियात्मक साधना द्वारा उद्भूत विचार-दर्शन ही सत्याश्रित, परिपक्व तथा सर्वकालीन हो सकता है। अतएव ऐसे विचार-दर्शन की जो अनुमान पर अवलंबित न होकर क्रिया तथा सत्य के प्रत्यक्ष दर्शन पर निर्भर हो उसकी उपादेयता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

सत्य निष्ठा तथा सत्यान्वेषण की भावना या कामना ही किसी दर्शन विशेष के मूल प्रेरणा-बिन्दु हैं और उसके विकास हेतु अपने इर्द-गिर्द में उपलब्ध निरूपता तथा जीवन की नाना विसंगतियां है जिनकी प्रतिक्रिया हृदय को आन्दोलित तथा मस्तिष्क को उत्तेजित कर सत्यानुभूति के लिए सन्नद्ध कर देती है तथा एक बार सत्य का अनुभव होने पर मनुष्य उस अनुभूत सत्य को बृहत्तर मानव समाज के कल्याण में नियोजित कर जहां विराट आत्मीयता के आनंद का आस्वादन एवं अनुभव करता है वहां विरूपता एवं विसंगतियों को दूर कर जीवन में सामरस्य एवं आनंद के संचार का भी व्यापक प्रयास करता है।

फिर सत्यनिष्ठ दृष्टा विचारक की चिन्तन शक्ति गम्भीर और सूक्ष्म पकड़ वाली ही नहीं होती अपितु उसमें भौतिक तथा पारंमार्थिक दोनों ही जीवन की बृहत्तर इकाइयों को संजोकर एक सुव्यवस्थित, सुचिंतित तथा सर्वांगिण दृष्टि बिन्दु प्रदान कर अपने युग की समस्याओं का समाधान के साधन जुटाने की अद्भुत क्षमता भी रहती है। उसका सत्य-दर्शन हर साधारण

व्यक्ति की भांति एकांगीन होकर सर्वांगिण एवं सर्व समावेशी तथा संस्पर्शक होता है। यही महान् और विराट् व्यक्तित्व की अद्वितीय महिमा है, गरिमा है।

ऐसे ही प्रखर व्यक्तित्व तथा ठोस क्रियात्मक विचार-दर्शन को लेकर गुरू गोरख नाथ मध्य-काल के संधि युग में भारतीय धर्म-साधना के रंग-मंच पर अवतीर्ण हुए। अपनी प्रबल सत्य जिज्ञासा, एकतानतापूर्ण उत्कट साधना तथा अनन्य तपश्चर्या से कुन्दन बनकर उन्होंने अपने युग की समस्याओं के लिए जिस व्यापक समाधान को प्रस्तुत किया उसमें निश्चय ही भारतीय समाज का बड़ा भारी उपकार किया है तथा उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की भारतीय समाज, साधना एवं संस्कृति पर अमिट छाप पड़ी है।

इस महामना महात्मा के विचार-दर्शन तथा साधना-पद्धति का अध्ययन मनन स्वनाम धन्य विद्वानों द्वारा किया गया है किन्तु उन्होंने मध्यकालीन सन्तों के विचार-दर्शन के सन्दर्भ में इसका निरूपण नहीं किया है। किसी ने भी गोरखनाथ की विचारधारा के हिन्दी निर्गुण साहित्य पर पड़े प्रभाव का निर्देशन या अनुसन्धान नहीं किया यह उपेक्षित कार्य-क्षेत्र ही प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का अनुसन्धेय विषय रहा है।

इस दृष्टि से यह अनुसन्धान आवश्यक एवं महत्वपूर्ण भी हो जाता है। क्योंकि मध्यकालीन धर्म, साधना, समाज और संस्कृति की चेतना को हृदयंगम करने, उसके पूर्वा पर सम्बन्ध सूत्रों के सम्यक् निर्धारण, परवर्ती संत-साहित्य के संतुलित एवं व्यवस्थित परीक्षण तथा तद्युगीन भारतीय समाज और संस्कृति के चिन्तन बिन्दु, मान्यताओं और प्रेरणाओं के सम्यक् अवबोध के लिये गोरखनाथ की विचारधारा के सन्दर्भ में मध्ययुगीन सन्त-साहित्य पर पड़े उसके प्रभाव का अद्यविधि उपेक्षित अनुसंधान स्वतः एक आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति का प्रयास प्रस्तुत शोध प्रबन्ध है।

स्व० डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल द्वारा संपादित गोरखबानी के आधार पर गोरखनाथ की विचारधारा का निरूपण किया गया है, किसी प्रकार की शास्त्रीय-विचारधारा से संवलित करने का प्रयास नहीं रहा है। विषय को स्पष्ट करने के लिए निश्चय ही नाथ पंथीय शास्त्रीय ग्रन्थों की सहायता ली गई है।

प्रस्तुत अध्ययन पांच खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में नाथ-पंथ के उद्भव और विकास का वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। नाथ पंथीय इतिहास-लेखन की समस्या पर भी विचार किया गया है एवं यह बताया गया है कि नाथ योगी बौद्ध नहीं, मूलतः शैव थे जिन पर शक्ति दर्शन का प्रभाव स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त पृष्ठ भूमि के रूप में नाथ पंथ से संबद्ध शैव शाक्त परम्पराओं एवं सम्प्रदायों के विकास का परिचय दे दिया गया है।

द्वितीय खण्ड में गोरखनाथी साहित्य से सम्बद्ध संस्कृत, हिंदी, बंगला आदि में उपलब्ध साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है।

तृतीय खण्ड में नाथपंथी नानान परम्पराओं, किंवदंतियों आदि के अध्ययन पर से गोरखनाथ के वविध्यपूर्ण विराट व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है जिससे उनके कृतित्व की गरिमा का बोध हो।

चतुर्थ खण्ड में पांच उपखण्डों में गोरखनाथ के विचार दर्शन, साधना पद्धति को प्रभावित करने वाले शैव शक्ति का विश्लेषण किया गया है साथ ही गुरु गोरखनाथ के तत्व चिन्तन, साधना पद्धति के वैशिष्ट्य को समझने का प्रयास हुआ है। योग की तैयारी के लिए कैसे आचरण की अपेक्षा है, इसकी विशद चर्चा के पश्चात् साधना पद्धति और पश्चात् गोरखनाथ की काव्य और कला की समीक्षा प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार उनके विचार-दर्शन, साधना, काव्य और कला के सर्वांगिणि अध्ययन का प्रयास हुआ है।

पंचम खण्ड में गोरखनाथ की विचारधारा के प्रभाव सीमा जो तत्व चिन्तन, आचार पक्ष, साधना, भाषा-शैली के क्षेत्रों तक प्रस्तुत है का गवेषणापूर्ण विवेचन-विश्लेषण कर दिया गया है। कबीर आदि सन्त इस क्षेत्र में गोरखनाथ से पर्याप्त प्रभावित थे, इसे लक्ष्य कर दिया गया है तथा उन आक्षेपों का परिहार भी कर दिया गया है जो प्रभाव को प्रश्न चिह्नित बनाते थे।

इस प्रकार इस शोध प्रबन्ध में भी गोरखनाथ की विचारधारा के सन्दर्भ में कबीर आदि सन्तो के साहित्य पर पड़े उनके प्रभाव का सम्यक् अध्ययन संपन्न हुआ है।

अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी–विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
धर्मशाला (हि. प्र.)।

बिलासपुरी के परसर्ग

O डॉ॰ देवेन्द्र काश्यप

प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं और मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं में कारकीय विभक्तियां किसी न किसी रूप में विद्यमान थी, परन्तु हिंदी तक पहुंचते-पहुंचते इनका स्थान कुछ स्वतंत्र शब्दांशों ने ले लिया। इन शब्दांशों के लिए भाषाविदों ने "परसर्ग" की संज्ञा दी। अब प्रश्न उठता है इनके मानकीकरण का, अर्थात् इन को लिखा कैसे जाए। यह मानकीकरण का प्रश्न इस लिए पैदा हुआ, क्योंकि 19वीं सदी में हिंदी के कई व्याकरण अंग्रेज़ी तथा हिंदी भाषा में लिखे गए जिनके फलस्वरूप हिंदी भाषा के प्रयोग में धीरे-धीरे व्याकरणिक एकरूपता आने लगी। इसके लिए आचार्य कामता प्रसाद गुरु का "हिंदी व्याकरण," 'अच्छी हिंदी" नाम से रामचन्द्र वर्मा, किशोरीदास वाजपेयी तथा भोलानाथ तिवारी आदि विद्वानों की पुस्तकें प्रकाशित हुई, जिनके माध्यम से हिंदी के मानक रूप के विकास में पर्याप्त सहायता मिली।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त 1898 ई॰ में नागरी प्रचारिणी सभा ने हिंदी वर्तनी और उसकी एकरूपता पर विचार करने के लिए एक समिति का गठन किया था। इस समिति के काफी निर्णय आज तक माने जा रहे हैं। इसके अंतर्गत कारक चिन्ह या परसर्गों को लिया जा सकता है। जिसके अनुसार संज्ञा में परसर्ग को अलग कर लिखने का तथा सर्वनाम से मिलाकर लिखने का नियम है।

बिलासपुरी बोली में भी इन परसर्गों को लिखने की समस्या विद्यमान है। पहाड़ी बोलियों पर शोध करने वाले विद्वान इन परसर्गों को मिलाकर या अलग कर लिखने के किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाए हैं। यदि हम इन पहाड़ी बोलियों को शौरसेनी अपभ्रंश के निकट मानते हैं तो कहा जा सकता है कि शौरसेनी अपभ्रंश से ही हिन्दी का विकास हुआ है और पहाड़ी बोलियों की अपनी कोई लिपि नहीं है उन्हें नागरी लिपि में ही लिखा जाता है। इस लिए बिना किसी विवाद में पड़े हमें यहां पर भी हिंदी के नियमों को ही मान लेना चाहिए। इस से हमारी यह समस्या सुगमतापूर्वक सुलझ जाएगी और हिंदी, पहाड़ी बोलियों के विकास में एक कड़ी का काम करेगी। क्योंकि किसी भी भाषा या बोली के विकास में ऐसा निर्णय अवरोधक नहीं

कहा जा सकता है। आज तक के हिन्दी के विकास पर दृष्टिपात करें तो पता चलता है कि अरबी, फारसी तथा अंग्रेज़ी आदि ने इसके विकास में योगदान ही दिया है।

बिलासपुरी में निम्नलिखित परसर्ग या कारक-चिन्ह प्रयुक्त होते हैं : ने, जो, ते, तई या ताई, खातर, बास्ते, पर, च तथा रा-रे-री या दा-दे-दी । इनको प्रस्तुत बोली में इस प्रकार दर्शाया जा सकता है :

"ने" हिंदी में 'ने' कर्तृवाचक परसर्ग का चिन्ह है। इसका प्रयोग भूतकालिक सकर्मक क्रिया में ही होता है। प्रस्तुत बोली में इसका रूप - "ऐं" तथा "ए" विभिन्न स्थितियों में मिलता है। इनसे "ने" का ही अर्थ प्रकट होता है। जैसे : मुण्डुए (लड़के ने) रामुए (रामू ने), चाचे (चाचा ने)

(क) - "ऐं" का प्रयोग उत्तम पुरूष तथा मध्यम पुरूष एक वचन सर्वनाम में ही होता है। हिन्दी में कर्त्ताकारक के उत्तम पुरूष एक वचन में जहां "मैंने" का प्रयोग होता है वहीं पर यहां "मैं" का प्रयोग होता है और अन्यत्र स्थानों पर हूऊं" का प्रयोग होता है। यथा : मैं (म-एं) गीत सुणाया = मैंने गीत सुनाया। (उ० पु० ए० व०) मैं (म-ऐं) चो टप्या = मैंने नाला पार किया। (उ० पु० ए० व०) तैं (त-ऐं) दस्या = तुमने बताया। (म० पु० ए० व०)

(ख) -ए का प्रयोग :

मुण्डुए (मुण्डु-ए) रोटी खाद्दी = लड़के ने रोटी खाई। रामुए (रामू-ए) कताब पढ़ी = रामू ने किताब पढ़ी। बकरे छाल मारी = बकरे ने छलांग लगाई।

इन तीनों उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि "ए" का प्रयोग मानवीय-अमानवीय दोनों प्रकार के संज्ञापदों में होता है चाहे क्रिया भूतकालिक हो या भूतकाल की किसी भी अवस्था की हो। "ए" 'ने' का ही पर्यायवाची होता है।

(ग) अन्य सभी स्थानों पर एक वचन सर्वनाम के साथ- "नी" परसर्ग आता है। यथा :
इन्-नी पत्थर मारेया = इसने पत्थर मारा। (प्रत्यक्ष)
तिन्-नी सद्या = उसने बुलाया (परोक्ष)
तिन्नी तिसजो कुट्या = उसने उसको पीटा।

(घ) अन्य बहुवचन सर्वनामों के साथ "हें" आता है :

1 निश्चयवाचक प्रत्यक्ष समीपवर्ती सर्वनाम :

इन्-हें सच्च गलाया = इन्होंने सच्च कहा।

2 परोक्ष निश्चय वाचक सर्वनाम :

तिन्-हें क्या दस्या = उन्होंने क्या बताया।

3 सम्बन्धवाचक सर्वनाम :

जिन्-हें तिजो दस्या = जिन्होंने तुझे बताया ।

तिजो किन्-हें कुट्या = आपको किसने पीटा ।

इस प्रकार कर्त्ता कारक में - "ए" परसर्ग से प्रतीत होता है कि यह - "ने" का ही अर्थ व्यक्त करता है और इसका प्रयोग भूतकालिक क्रिया में ही होता है ।

2 "जो" परसर्ग :

हिंदी के कर्मकारक में "को" परसर्ग का प्रयोग होता है जबकि बिलासपुरी में इसके लिए "जो" परसर्ग के रूप में प्रयुक्त होता है । संज्ञा या सर्वनाम के उपरान्त जो परसर्ग प्रयुक्त होता है वह कर्मकारक कहलाता है । "जो" परसर्ग को इस बोली में वाक्यस्तर पर इस प्रकार दर्शाया जा सकता है ।

मुण्डुयें लोकां जो गाणे सुणाए = लड़कों ने लोगों को गाने सुनाये ।
नत्थुए अपणे मुण्डुए जो कुट्या = नत्थू ने अपने लड़के को पीटा ।
तिसा जो दस रपइए मिल्ले = उसको दस रूपये मिले । (स्त्री० लि० ए० व०)
तिस जो दस्या = उसे (को) बताया ।
ह्ऊं उत्थी जो तूंह् सौगी चलना = मैं वहां (को) आपके साथ चलूंगा ।
असां जो क्या मिल्या = हमें (को) क्या मिला ।

पंजाबी में "को" के लिए "नूं" परसर्ग प्रयुक्त होता है । यथा :

कुड़ी नूं सद्दो = लड़की को बुलाओ ।

पंजाबी सीमांत बोली है लेकिन बिलासपुरी में जहां - "जो" परसर्ग है वहीं पंजाबी में उसी भाव के लिए "नूं" परसर्ग प्रयुक्त होता है ।

3. -"ते" (से) परसर्ग :

बिलासपुरी में - "ते" का प्रयोग वहां होता है जहां पर क्रिया के करने के साधन का बोध हो । हिंदी में इसके लिए "से" परसर्ग प्रयुक्त होता है । इसका शून्य - रूप भी प्राप्य है । यथा :

(क) - (शून्य) रूप का प्रयोग केवल पूर्ण पक्ष में ही होता है । यथा :

मैं अपणियां हाखी देख्या = मैंने अपनी आंखों (से) देखा ।
कन्ना सुणूरी गल्ल = कानों (से) सुनी हुई बात ।
सैह् पुह्खा मर्या = वह भूखा (भूख से) मरा ।

इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि - "ते" परसर्ग का शून्य रूप भी मिलता है और इसका प्रयोग केवल पूर्ण पक्ष में ही होता है ।

(ख) - "ते" वाक्य स्तर पर :

तिसते कितना बड्डा आ = उस से कितना बड़ा है ।
तड़के ते बरखा होया कराई = सुबह से वर्षा हो रही है ।
मैं तिसते पैसे लैणे = मैंने उस से पैसे लेने हैं ।
हं.ऊं तिसाते कोई चार साल बड्डी हुंगी = मैं उससे लगभग चार वर्ष बड़ी हूं ।
कल्ला ते अज्ज ठण्डक ई = कल से आज कुछ ठण्ड है ।

मध्यकाल में तुलसी तथा सूर ने भी - "ते" का प्रयोग "से" के अर्थ में ही किया है । यथा :
राम ते अधिक राम कर दासा । (मानस)
जल समूह बरसत अंखियन-तैं । (सूर)
"मैं कहा करौं सुतहि नहिं बरजति, घर तैं मोहिं बुलावै ।" (सूर)

(ग) - "कन्ने"

अन्य सभी स्थितियों में - "कन्ने" परसर्ग का प्रयोग "से" के अर्थ में होता है । जैसे :
तिसे सोठुए कन्नें कुट्या = उसने डण्डे से पीटा ।
सकारीए बन्दूका कन्ने सूर मार्‌या = शिकारी ने बन्दूक से सूअर मारा ।
चाकुए कन्ने बड्ड = चाकू से काटो ।

इसका अर्थ "के साथ" भी लिया जा सकता है और ऊपर के इन वाक्यों में "से" के स्थान पर "के साथ" भी लि[illegible] ा सकता है ।

4. रा-रे-री या दा-दे-दी परसर्ग :

बिलासपुरी में का-के-की को रा-रे-री या दा-दे-दी चिन्हों द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है जो कि संबंध कारक के चिन्ह हैं । राजस्थानी साहित्य में भी रा-रे-री का प्रयोग हुआ है । इसी कारण से विद्वान् इन बोलियों को राजस्थानी के निकट मानते हैं । यथा :

किसरा (किसका), तिसरा (उसका), असांरा (हमारा)
रामुए री मा बमार ई = राम की मां बीमार है ।
उसरी चाची किती जो गई री = उसकी चाची कहां गई है ।
तिसरा मामा आइरा = उसका मामा आया है ।
रामुए रे मामे रा पाह्‌यत्यू आइरा = रामू के मामा का दोस्त आया है ।
इसी प्रकार रा-रे-री के स्थान पर दा-दे-दी लिखा जा सकता है ।

5. "च" परसर्ग :

यह "बीच" का परिवर्तित रूप है तथा "बिच" का संक्षिप्त रूप है । मानक हिन्दी में इसके लिए "मैं" तथा "पर" परसर्गों का प्रयोग होता है और इसका प्रयोग वस्तु या रूप को व्यक्त करने के लिए संज्ञा या सर्वनाम के पश्चात् होता है ।

कुछ उदाहरणों द्वारा इस तथ्य को स्पष्ट किया जा सकता है :

(क) **"च" परसर्ग**

कटोरिया च दाल पाई दे=कटोरी में दाल डाल दो।

सारेयां च खरा कुण ऐ=सभी में अच्छा कौन है।

मांहच इक्कोई नुक्स ऐ बस=मुझ में एक ही कमी है।

असांच कुण जादा पढ़ीरा=हम में कौन अधिक पढ़ा है।

इसजो बाल्टिया च पाई दे=इसको बाल्टी में डाल दे।

(ख) **"च" का एक अन्य रूप "बिच" भी मिलता है।**

आटा पीपे बिच ऐ=आटा टीन में है।

इस बिच क्या कसूर ऐ=इसमें क्या गल्ती है।

— "बिच" का प्रयोग सूर ने भी किया है —

"फूले व्याल दूरे तें प्रगटे, पवन पेट भरि खायो।

ऊंचे बैठि बिहंग सभा बिच कोकिल मंगल गायो ।।"

(ग) **"पर"**

"पर" परसर्ग का प्रयोग सभी स्थितियों में उपलब्ध होता है। यथा :

टोपी सिरा पर ई=टोपी सिर के ऊपर है।

इसजो मेजा पर रखी दे=इसको मेज़ पर रख दो।

चूल्हे पर क्या रखूदा=चूल्हे पर क्या चढ़ाया है।

तिस पर रखी दे=उस पर रख दो।

लद्दे पर क्या बैठी रा=मकान के शीर्ष पर क्या बैठा है।

6. **"सौगी" तथा-"कन्ने" परसर्ग**

जिस में सहयोग यथा होने की भावना निहित हो वहां पर सहवाचक या सहार्थक (सोसिएटिव) परसर्ग होता है। हिन्दी में इसके लिए "के साथ" सहवाचक परसर्ग का प्रयोग होता है। उसी के अनुरूप इस बोली में "सौगी" (साउगी) तथा–"कन्ने" का प्रचलन है।

(क) **"सौगी" या "साउगी"**

हऊं तिस सौगी गइरा था=मैं उसके साथ गया हुआ था।

असां सौगी चल=हमारे साथ चलो।

बिमला मांह्, सौगी जांगी=बिमला मेरे साथ जाएगी।

(ख) **"कन्ने"**

दाल् कन्ने चौल्=दाल और भात (चावल)।

छल्लियांरी रोटी कन्ने सरोआं रा साग=मक्की की रोटी और सरसों का साग।

हऊं तिस कन्ने आया=मैं उसके साथ आया।

तूंह मुञ्ज कन्ने चल्यां=तुमने मेरे साथ चलना।

कुड़ी कन्ने मुण्डू=लड़की और लड़का।

अंम्मा कन्ने बापू=माता और पिता।

लाड़ा कन्ने लाड़ी=दुल्हा और दुल्हन।

ऊपर के इन उदाहरणों मे "और" के स्थान पर "के साथ" का प्रयोग भी किया जा सकता है। बिलासपुरी की सीमान्त बोलियों-हमीरपुरी, कुटलैहड़ी, मण्डियाली में "सौगी" तथा "कन्ने" का प्रयोग इसी रूप में होता है जबकि बघाटी में इसके लिए "साए" तथा पंजाबी में "नाल्" परसर्ग का प्रयोग होता है।

7. "खातर" तथा-"तईं" परसर्ग :

इन परसर्गों में मनोरथ या प्रयोजन अथवा उद्देश्य का भाव निहित रहता है। यह भाव किसलिए अथवा किसके लिए का होता है। बिलासपुरी में प्रयोजनवाचक के लिए "तईं" या "ताईं" तथा "खातर" परसर्ग हैं। इनका प्रयोग "के लिए" के अर्थ में सम्बन्धवाचक पर-प्रत्यय के रूप में होता है। यथा :

मेरे/मुञ्ज तईंयां ताईं=मेरे लिए।

मेरे/मुझ/मांह, खातर=मेरे लिए।

इसरे तईं/ताईं=इसके लिए

इसरे खातर=इसके लिए।

तिन्हां खातर=उनके लिए।

कुड़ियां खातर=लड़कियों के लिए।

इसरे तईं=इसके लिए।

इन्हां तईं=इनके लिए।

बिमला तईं/खातर=बिमला के लिए।

लाड़िया तईं/खातर=दुल्हन के लिए।

असां खातर/तईं=हमारे लिए।

इनके अतिरिक्त यहां पर-"बास्ते" परसर्ग का प्रयोग भी "के लिए" के अर्थ में मिलता है। यथा: —

मेरे बास्ते=मेरे लिए।

तिन्हां बास्ते=उनके लिए।

उन्हां बास्ते=उनके लिए।

तेरे बास्ते एह् गल्ल ठीक नीं=तुम्हारे लिए यह बात ठीक नहीं है।

"बास्ते" परसर्ग को लेकर डॉ० माता बदल जायसवाल ने कहा है, 10वीं शती से पूर्व "के लिए" के अर्थ में "बास्ते" शब्द, का प्रयोग प्राचीन हिन्दी में होने लगा था। इसी कारण तो इन बोलियों का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश से माना जाता है।

बिलासपुरी के सीमावर्ती क्षेत्रों की बोलियों-मण्डयाली में-"कट्ठे", बघाटी में-"रिखातर" हमीरपुरी तथा कुटलैहड़ी में इनका प्रयोग इसी रूप में होता है। पंजाबी में-"लई" परसर्ग का प्रयोग होता है।

इस बोली में-"तईं" शब्द का प्रयोग "तक" के अर्थ में भी होता है। डॉ० तेस्सितोरी इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द "तावति" के समकक्ष अधिकरण रूप से मानते हैं—तावति > ताऊंअहि> तांई> ताईं।

प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में इसका अर्थ-"तब तक", "वहां तक", 'तक' होता है। इसका यही अर्थ संस्कृत तथा अपभ्रंश में भी है। यही-"तंई" या "तांई" शब्द सम्प्रदान तथा कर्म कारक की भावनाओं को लिए हुए "के लिए" तथा "तक" के अर्थ में अभी तक इस बोली में प्रचलित है। "तक" के अर्थ में वाक्य स्तर पर इसका प्रयोग :—

मैं तिस ताईं जाणा=मुझे उस तक जाना है।
सैंह् कन्नां तांई लम्बी टोपी पह्ना=वह कानों तक लम्बी टोपी पहनता है।

उपर्युक्त विवेचन से प्रकट है कि बिलासपुरी में आगत परसर्ग संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश परम्परा से आए हैं। इसका सीधा सम्बन्ध शौरसेनी अपभ्रंश से जुड़ता है। इसके कुछ परसर्गों का सम्बन्ध राजस्थानी के संबंध को भी सूचित करता है। कुछ परसर्ग पंजाबी से भी प्रभावित या आगत जान पड़ते हैं। कुछ स्वतन्त्र परसर्गों का भी इसमें विकास हुआ है। परसर्गों का यह स्वरूप डॉ० ग्रियर्सन की इस धारणा की निस्सारता को भी उद्घाटित करता है कि "कहलरी बिलासपुरी बोली होशियारपुरी-दोआबी (पंजाबी का एक क्षेत्रीय रूप) ही है।"

ए-28 सैक्टर-14,
चण्डीगढ़-160014.

भगवान परशुराम तथा जमलू

O शरमानन्द श्रवण

दुष्ट क्षत्र विनाशाय सहस्र कर शत्रवे ।
रेणुका गर्भजाताय जामदग्न्याय ते नमः ॥
एलस्य चोर्वशी गर्भात्षडासन्नात्मजा नृप ॥
आयु श्रुतायु : सत्यायु रयोऽथ विजयो जयः ॥१॥

कुशाम्बु के वीर्य से राजर्षि गाधि का जन्म हुआ। गाधि के एक सत्यवती नाम की सुन्दरी कन्या हुई। द्विजवर ऋचीक ने गाधि के पास जाकर उन की कन्या से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। गाधि ने वृद्ध ऋषि को कन्या के योग्य पात्र वर न समझ कर कहा कि हे मुनिवर! जिन का रङ्ग चन्द्रमा के तुल्य और एक कान श्याम हो ऐसे एक हजार घोड़े कन्या का शुल्क दीजिये, क्योंकि हम कुशिक वंश में उत्पन्न हैं। इस बात को सुनकर ऋचीक जी राजा का अभिप्राय समझ गये और उसी समय वरूण जी के पास से वैसे ही एक हज़ार घोड़े लाकर राजा को दे दिये एवं सत्यवती से विवाह किया। कुछ दिनों पश्चात् स्त्री और सास दोनों ने ऋचीक से पुत्र होने के लिये प्रार्थना की, ऋचीक ने अपनी पत्नी के लिये ब्रह्म मंत्र से तथा सास के लिये क्षत्र मंत्र से अभिमन्त्रित चरु (खीर) पकाया और स्वयं तब तक स्नान करने के लिये गये। अपने चरु से कन्या के चरु को श्रेष्ठ समझ कर ऋचीक की सास ने अपनी कन्या से उस का चरु मांग लिया। सत्यवती ने भी अपना चरु दे दिया और स्वयं माता का चरु खा गई। मुनि जब लौट कर आए और वह वृत्तांत जाना, तब अपनी स्त्री से कहा कि तुम ने बहुत ही बुरा किया। चरु बदल जाने के कारण तुम्हारा पुत्र घोर क्षत्रिय प्रकृति का उग्र और भाई श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी होगा। यह सुन सत्यवती ने डर कर पति को विनय पूर्वक प्रसन्न किया और कहा, स्वामिन ! ऐसा न हो। भार्गव ऋचीक ने कहा "अच्छा तुम्हारा पुत्र तो ऐसा न होगा किन्तु पौत्र अवश्य होगा।" तदनन्तर सत्यवती के पेट से जमदग्नि ऋषि अवतरित हुए और सत्यवती शरीर छूटने पर लोक पावनी पवित्र कौशिकी नाम नदी हुई। जमदग्नि का विवाह रेणु की कन्या रेणुका के साथ हुआ। जमदग्नि के रेणुका के गर्भ से वसुमान आदि पुत्र हुए। उन में सब से छोटे परशुराम जी हुए उन्होंने हैह्य वंश का विनाश किया एवं उन को पंडितजन विष्णु भगवान का अंशावतार कहते हैं। उन्होने इस पृथ्वी को इक्कीस बार इस वंश से शून्य कर दिया।

प्रश्न उठता है कि ऐसा भगवान परशु राम ने क्यों किया ?

उत्तर :- हैह्य वंशीय क्षत्रियों के अधिपति कार्तवीर्य अर्जुन राजा ने सेवा कर के नारायण

के अंशावतार दत्तात्रेय को प्रसन्न किया, उन की कृपा से उन को हजार भुजाऐं प्राप्त हुई और वह शत्रुओं के लिये दुर्धर्ष हो गये। अव्याहत, इंद्रिय सामर्थ्य सम्पत्ति, प्रभाव, वीर्य, बल और योगेश्वर पद प्राप्त हुआ एवं जिस में अणिमा आदि सिद्धियां विराजमान हैं, भी मिला। वह सर्वत्र विचरते थे, पवन के समान उन की गति कहीं नहीं रुकती थी।

एक बार वैज्यन्ती माला धारण किये मदमत सहस्र बाहु रूपवती स्त्रियों सहित नर्मदा नदी के जल में जलकेलि करते हुए परशुराम ने अपनी भुजाओं से नदी का प्रवाह रोक दिया। उधर दिग्विजय के लिये निकले रावण ने महिषमति नगरी में नर्मदा नदी के किनारे डेरा डाल दिया था और वहां वह शिव पूजन कर रहा था। नदी का जल जो रुका हुआ था पीछे हटने से रावण का डेरा और पूजा की सामग्री वह गई। इस रोष में रावण ने तुरन्त अर्जुन पर आक्रमण कर दिया और अर्जुन ने उसे बानर के समान पकड़ कर बन्दी बना दिया।

वही सहस्र बाहु एक दिन आखेट (शिकार) के लिये वन में घूमते-घूमते जमदग्नि ऋषि के आश्रम पर पहुंचे, ऋषि ने इन्हें आदर पूर्वक बैठाया और अपनी काम धेनु द्वारा सम्पादित विविध प्रकार की अमात्य से सेना तथा अश्वादि वाहन सहित अर्जुन का पूजन तथा सत्कार किया। अपने राज्यैश्वर्य से बढ़कर उस कामधेनु सम्पादित सामग्री को देखकर अर्जुन के मन में यह अभिलाषा हुई कि मैं इस धेनु को अपने पुर ले जाऊं, अतएव उन को मुनि के किये हुए सत्कार से सन्तोष न हुआ। जब मांगने से न मिले, तब अर्जुन ने अहंकार पूर्वक अपने अनुचरों को आज्ञा दी कि 'तुम लोग इस गऊ को बल पूर्वक ले चलो'। अर्जुन के चले जाने पर जमदग्नितनय परशुराम जी आश्रम में आये। अर्जुन के इस दौरात्मय को सुन कर वह चोट खाये हुए सर्प के समान घोर कोप कर के सिंह जैसे यूथपति गजराज का पीछा करता है, उस प्रकार परशु, धनुष-वाण आदि आयुद्धों सहित धनुष हाथ में लिये महावेग से आ रहे हैं एवं इधर उधर बिखरी हुई उन की जटाऐं सूर्य की किरणों के समान प्रकाशमान हैं, परशु राम जी से युद्ध करने के लिये गदा, असि, वाण, ऋष्टि, शतघ्नी और शक्ति आदि अस्त्र-शस्त्र युक्त सहस्र अक्षौहिणी चतुरङ्गिणी सेना (हाथी-घोड़े, रथ और पैदल) सहस्र बाहु ने भेजी। किन्तु भगवान परशु राम ने अकेले ही उन का संहार किया। मन और वायु के समान वेग से शत्रु सेना का नाश करने वाले परशुराम जी जहां जहां परशु का प्रहार करने लगे वहां-वहां राशि शत्रु सैनिक बाहु, उरू और मस्तक आदि अंगों से विहीन प्राण हीन होकर गिरने लगे एवं उन के अश्व व सारथी भी निहत होने लगे। अर्जुन ने जब देखा कि रण भूमि में रूधिर की कीचड़ हो गई और परशु राम ने परशु और बाणों के प्रहार से सैनिकों के कवच, ध्वज, धनुषवाण एवं शरीर छिन्न-भिन्न कर दिये हैं एवं सारी सेना नष्ट हो गई है, कुपित होकर स्वयं युद्ध के लिये आये। अर्जुन ने अपने सहस्र बाहुओं से एक साथ पांच सौ वाण उन पर चढ़ाए किन्तु अस्त्रधारियों में अग्रगण्य-परशुराम ने एक धनुष पर अनेक वाण चढ़ा कर उन से एक साथ अर्जुन के पांच सौ धनुष काट डाले। तदनन्तर महीपति अर्जुन अपनी भुजाओं में अनेक पर्वत और वृक्ष ले कर महा वेग से परशु राम की ओर बढ़े-किन्तु परशुराम जी ने कठोर धारों वाले सर्पफनसदृश उठे हुए सहस्र बाहु

के सहस्र बाहुओं को काट कर उस के सिर को भी काट डाला। इस प्रकार राजन के दश हजार पुत्र प्राण बचा कर भाग गये। शत्रु वीर नाशन परशु राम जी अपनी कामधेनु को उस के वत्स सहित लेकर आश्रम में आए।

परशुराम जी ने पिता और भाईयों के आगे सहस्त्र बाहु वध रूप अपने कर्म का वर्णन किया, उसे सुन कर जमदग्नि ने कहा हे बाहो ! तुम ने यह घोर पाप किया जो सर्वदेवमय राजा का वध किया। हे तात ! ब्राह्मण गण एक क्षमा गुण के ही कारण जगत के पूज्य हो रहे हैं। वत्स! क्षमा से ही सूर्य की प्रभा के तुल्य ब्रह्म तेज शोभा को प्राप्त है एवं क्षमा शील पुरूषों पर ही भगवान हरि सन्तुष्ट हाते हैं।

राज्ञो मूर्धावसिक्तस्य बधो ब्रह्मवधाद्गुरु ॥
तीर्थ संसेवया चांहो जह्यङ्गाच्युतचेतन: !!

पुत्र राज्यासन पर जिस का सिर से अभिषेक हुआ है उस क्षत्रिय राजा का वध ब्रह्म हत्या से भी गुरुतर है-अतएव तुम भगवान में मन लगाकर तीर्थ यात्रा कर के पाप का प्रायश्चित करो।

पिता के उपदेश से परशुराम जी 'जो आज्ञा' कहकर तीर्थयात्रा के लिए गए और एक वर्ष तीर्थ पर्यटन करके अपने आश्रम को लौट आये। एक समय जमदग्नि मुनि की पत्नी रेणुका गंगा तट पर गई, वहां देखा कि पद्म मालाधारी चित्ररथ नाम गंर्धवराज अप्सराओं के साथ जल केलि कर रहा था। रेणुका वहां मुनि के पूजन के लिये गंगा जल लेने गई थी। गंधर्वराज पर कुछ आसक्त हो कर वहीं खड़ी रही, मुनि के हवन की बेला बीतती जाती है इस का उन को ध्यान न रहा। जब रेणुका को ज्ञात हुआ कि विलम्ब हो गया और मुनि के अग्निहोत्र का समय बीत गया तब शाप के भय से कांपती हुई आश्रम को आई और जल पूर्ण कलश पति के आगे रख हाथ जोड़ कर खड़ी हुई। समाधि द्वारा पत्नी के मानसिक व्याभिचार का वृत्तान्त ज्ञात कर क्रोध से कांप रहे मुनि वर ने पुत्रों से कहा 'पुत्रो' इस दुष्टा पापिनी को मार डालो। किन्तु माता को मारने का साहस किसी पुत्र को न हुआ। तब पिता की आज्ञा पाकर परशुराम जी ने भाइयों सहित माता का सिर काट डाला क्योंकि वह पिता की समाधि और तपस्या का प्रभाव भली-भांति जानते थे। प्रसन्न होकर जमदाग्नि ऋषि ने परशु राम को वर देना चाहा। परशु राम ने कहा यदि आप सन्तुष्ट है तो यही वर दीजिये कि मेरे मरे हुए भाई और माता फिर जी उठे और उन को यह स्मरण न रहे कि हम को परशुराम ने मारा था। तथापि वर देते ही जैसे कोई सोकर उठे, वैसे ही माता और भाई कुशल पूर्वक सजीव होकर उठ खड़े हुए। पिता के तपो बल को भली भान्ति जानने से ही परशुराम ने सुहृदगण का वध किया था।

कुछ समय पश्चात् अर्जुन राजा के दस हजार पुत्र जो भाग कर चले गये थे अपने पिता का बदला लेने की इच्छा से एक घड़ी भी सुख नहीं पाते थे, परश राम से न जीतने के कारण प्रकट रूप से बदला लेने में तो असमर्थ थे, अत: छिप कर अवसर देखने लगे, एक दिन परशु-

राम भाईयों सहित वन को गये थे, यह अवसर पाकर अर्जुन के पुत्र बदला चुकाने को मुनि के आश्रम में आये। अग्निहोत्र शाला में बैठे हुए हरि के ध्यान में लीन जमदग्नि को देख कर उसी क्षण उन पापियों ने उन का सिर काट लिया: परशु राम की माता ने दीनता सहित बहुत प्रार्थना की, पर उन निष्ठुर क्षत्रियाधमों ने उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया और बल पूर्वक जमदग्नि का सिर काट कर चले गये। रेणुका हा राम, हा पुत्र पुकारने लगी :—

माता का आर्तनाद सुनते ही सब भाईयों सहित परशुराम जी शीघ्र आश्रम में आये और आ कर देखा कि पिता मरे पड़े हैं। परशुराम जी दुःख, क्रोध, अधैर्य एवं पीड़ा के आवेग से विमोहित हो पड़े। हा तात! हा साधो! हा धर्मिष्ट! हम को यहां छोड़ कर आप स्वर्ग चले गये। इस प्रकार अनेक भांति विलाप कर के परशुराम जी ने पिता की मृत देह को भाइयों की देख-रेख में छोड़ दिया एवं सुतीक्ष्ण परशु लेकर उन क्षत्रिय वंश का विनाश करने के विचार से चले। फिर तो परशुराम जी ने उन ब्रह्म हत्या करने वाले अधम क्षत्रियों की महिषमति पुरी को गये एवं वहीं अर्जुन के पुत्रों के कटे हुए सिरों के ढेर से पर्वत सा बना दिया। फिर परशुराम ने मरे हुए पिता के देह में उन का कटा हुआ सिर जोड़ उन को कुशासन पर बिठा कर अनेक यज्ञों से सर्व-देवमय परमात्मा का पूजन किया। अन्त में होता को पूर्व दिशा, ब्रह्मा को दक्षिण दिशा, अश्वर्यु को पश्चिम दिशा, उद्गाता को उत्तर दिशा, अन्योन्य ऋषि गणों को अवांतर दिशा, कश्यप को बीच की पृथ्वी एवं उपद्रष्टा को आर्य वर्त देश दक्षिणा में देने के पश्चात् जब आपने पास कुछ नहीं रहा तो उन्होंने समुद्र में अपने वाणों द्वारा एक खुश्क स्थान बनाया जिसे गवा (गवाद्वीप) के नाम से पुकारा जाता है। अन्त में उन्होंने शेष भूमि को कुछ गौड ब्राह्मणों को दे दिया।

भगवान परशु हर युग में ही थे-जैसे त्रेता में। श्री राम चन्द्र काल में सीता स्वयंवर के समय दो राम का भिड़ना अथवा महाभारत काल द्वापर में भीष्म पितामह से युद्ध तथा युधिष्ठर को ज्ञान देना, अब हम इसी बारे में कुछ प्रमाण देंगे :—

चौ० :— खरभरु देखि विकल पुर नारी,
सब मिलि देहिं महीपन्ह गारी॥
तेहि अवसर सुनि सिवधनु भंगा
आए भृगुपति कमल पतंगा॥१॥

देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवालुकाने!!
गौरी सरीर भूति भल भ्राजा। भाल विसाल त्रिपुंड विराजा॥२॥
सीस जटा ससि वदन सोहावा। रिसि लस कछुक अरुन होई आवा॥
भृकुटि कुटिल नयन रिसिराते। सहजहुं चितवत मनहुं रिसाते॥३॥
वृषभ कंध उर बाहु विसाला। चारु जनेऊ माल मृग छाला॥
कटि मुनि वसन तून दुई बांधे। धनु सर करि कुठार कल कांधे॥४॥

(दोहा)-सांत वेष करनो कठिन, वरनि न जाईं सरूप ।
धरि मुनि तन जनु वीर रसु, आयउ जहं सब भूप ॥

चौ :— देखत भृगुपति वेषु कराला । उठे सकल भय विकल बुआला ॥
पितु समेत कहि कहि निजनामा । लगे करन सब दंड प्रणामा ॥१॥
जेहि सुभाय चितवहिं हितु जानि । सो जाने जनु आई खोटानी ॥
जनक वहोरि आई सिर नावा । सीय बोलाई प्रनाम करावा ॥२॥
आसिष दीनि सखि हर्षानि । निज समाज लै गई सयानीं ॥
विश्वमित्र मिले पुनि आई । पद सरोज मेले दोउ भाई ॥६॥
राम लषन दशरथ के ढोटा । दीन्हि असीस देखि बल जोटा ॥
रामहि चितइ रहे थकि लोचन । रूप अपार मार मद मोचन ॥४॥

दो : - वहुरि विलोकि विदेह सन, कहहू काह अति भीर !
पूंछत जानि अजान जिमि, व्यापेउ कोपु सरीर !!

चौ : समाचार कह जनक सुनाए । जोह कारन महीप सब आए ॥
सुनत बचन फिरि अनत निहारे । देखे चाप खंड महि डारे ॥१॥
अति रिसि बोले बचन कठोरा । कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा ॥
वेगि दिखाउ मूढ़ न त आजु । उलटौं महि जहं लहि तव राजु ॥२॥
अति डर उतरू देत नृपु नांहि । कुटिल भूप हरवे मन मांहीं ॥
सुर मुनि नाग नगर नर नारी । सोचहिं त्रास सकल उर भारी ॥३॥
मन पछताति सीय महतारि । बिधि अब संवरी बात विगारि ॥
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता । अर्ध निमेष कलप सम बीता ॥४॥

दोहा : समय विलोके लोग सब, जानि जानकी भीर !
हृदय न हरषु विषादु कछु, बोले श्री रघुबीर !!

चौ :— नाथ संभुधनु भंजनिहारा । होइहि केउ एक दासु तम्हारा ॥
आयसु काह कहिय किन मोहि । सुनि रिसाई बोले मुनि कोही ॥१॥
सेवकु सो जो करैं सेवकाई । अरि करनी कारे करिअ लराई ॥
सुनहु राम जोहें सिव धनु तोरा । सहस बाहु सम सोरिपु भोरा ॥२॥
सो बिलगाउ बिहाई समाजा । न त मारे जैहैं सब राजा ॥
सुनि मुनि बचन लषन मुसुकाने । बोले परसु धरहि अपमाने ॥३॥
वहु धनुहीं तोरी लरिकाईं । कब हुं न असि रिस कीन्ह गोसाईं
एहि धनु पर ममता केहि हेतु । सुनि रिसाई कह भृगु कुल केतु ॥४॥

दो० रे नृप बालक कालबस । बोलत तोहि न संभार !!
धनुहि समतिपुरारि धनु । विदित सकल संसार !!

यथा :— वचन चय चातुरी परसुधर गर्वहर,
लखन कहा हंसि हमरे जाना । सुबहु देव सब धनुष समाना ॥

का छति लाभु जून धनु तोरे । देखा राम नयन के भोरे ।।१।।
छुअत टूट रघुपतिहि न दोषु । मुनि बिनु काज करिअकित रोषू ।।
बोल चितइ परसु की ओरा । रे सठ सुनोहि सुभाउ न मोरा ।।२।।
बालक बोलि बधौं नहि तोहीं । केवल मुनिजड़ जानहि मोहीं ।।
बाल ब्रह्मचारी अति कोही । बिस्व विदित क्षत्री कुल द्रोही ।।३।।
भुज बल भूमि भूप बिनु कीन्हीं । बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्हीं ।।
सहस बाहु छेदनिहारा । परसु विलोकु महीपकुमारा ।।४।।

दो० मातु पितहि जनि सोच बस, करसि महीस किसोर ।
गरभन के अर्भक दलन । परशु मोर अति घोर !!

चौ० विहंसि लषनु बोले मृदु बानी । अहो मुनीसु महा भटमानी ।।
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारु । चहत उड़ावन फूंके पहारु ।।१।।
इहां कुम्हड़ बतिया कोउ नांहीं । जे तरजनी देखि मर जांई ।।
देखि कुठारु सरासर बाना । मैं कछु कहा सहित अभिमाना ।।२।
भृगुसुत समुझि जनेउ विलोकि । जो कछु कहहु संहउ रिसिरोकी ।।
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई । हमरे कुल इन्ह पर न सुराई ।।३।।
वधे पापु अपकीरति हारे । मारतहू या परिअ तुम्हारे ।।
कोटि कुलिस सम वचन तुम्हारा । व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा ।।४।।

दो० जो विलोकि अनुचित कहेऊं, छमहु महामुनि धीर !
सुनि सरोष भृगु बंस मुनि, बोले गिरा गंभीर !!

चौ० कौसिक सुनहु मंद यहू बालक, कुटिल कालबस निज कुल घावक ।।
भानु बंस राकेस कलंकु । निपट निरंकुस अबुध असंकू ।।१।।
काल कवलु होइहि छन माहीं । कहों पुकारि खेरि मोहि नाहीं ।।
तुम हठ कहू नौ चहहु उबारा । कहि प्रतापु बलु रोष हमारा ।।२।।
लषन कहे मुनि सुजसु तुम्हारा । तुम्हहि अछत को बरने पारा ।।
अपने मुंह तुम आपनि करनी । बार अनेक भांति बहु बरनी ।।३।।
नहि सन्तोष त पुनि कछु कहहू । जानि रिस रोकि दुसह दुख सहहू ।।
वीर वृति तुम धीर अछोभा । गारि देत न पाबहु सोभा ।।४।।

दो० सूर समर करनी करहि कहि न जनावहीं आपु ।
विद्यमान रन पाइ रिपु, कायर कथहि आपु ।

दो० गाधि सुनू कह हृदय हंसि, मुनिहि हरि यैरी सूझ ।
अयमय खांड न ऊख मय, अज हुं न बूझ अवूझ ।।
लखन उतरि आहुति सरिस, भृगुवर कोप कृसानु ।
बढ़त देखि जल सम वचन, बोले रघुकुल भानु ।।

कई प्रकार के ऊंच-नीच तोल की बातें राम लक्ष्मण और परशुराम में हुई जैसे परशु राम जी ने कहा ।

गर्भ स्रवहिं अवनिप खनि, सुनि कुठार गति घोर ।
परशु अछत देखौं जियत, वैरी भूप किसोर ॥
परशु राम तब राम प्रति, बोले उर अति क्रोधु ।
संभु सरासनु तोरि सठ, करसि हमार प्रबोधु ॥

दो० प्रभु सेवकहिं समरु कस, तज हु बिप्रवर रोसु ॥
बेषु बिलोकें कहेसि कछु, बालकहू नहिं दोसु ॥
बार-बार मुनि त्रिप्रवर, कहा राम सन राम ।
बोले भृगु पति सरुष हंसि, तहूं बंधु सम बाम ॥
जौ हम निदरहिं बिप्रवदि, सत्य सुनहू भृगुनाथ ।
तौ अस को जग सुभट जेहि, भयबस नावहिं माथ ॥
जाना राम प्रभाऊ तब, पुलक प्रफुल्लित गात ।
जोरि पानि बोले बचन, हृदय न प्रेमु अमात ॥

इसी प्रकार महर्षि लोमश द्वारा धर्मराज महाराज युधिष्ठर को वर्णित प्रसंङ्ग इस प्रकार है : –

"परशुराम जो के तेजोहीन होने पुनः तेज प्राप्त करना"

श्री राम जी का सुयश सुनकर रेणुका सुवन भृगुवर्य को बड़ा कुतूहल हुआ था, और तब वे उन के पराक्रम की परीक्षा लेने के लिये अयोध्या पुरी गये, वहां इन के आगमन को सुनकर दशरथ जी ने राम को, सशस्त्र सुसज्जित राज्य की सीमा पर रख दिया-उन को जब परशुराम जी ने देखा, और कहा, । राजकुमार ! 'मेरा यह धनुष काल के समान कराल है यदि तुम में बल हो तो इसे चढ़ाओ ।' श्री राम चन्द्र ने वह दिव्य- धनुष ले लिया और खेल-खेल में ही चढ़ा दिया, फिर परशु राम जी ने एक और दिव्य बाण देकर कहा कि अब इसे कान तक खींच कर चढ़ाओ ।

यह सुनकर श्री रामचन्द्र जी ने कहा 'भृगुनन्दन' आप बड़े अभिमानी जान पड़ते हैं । आप ने अपने पितामह ऋचीक की कृपा से विशेषतः क्षत्रियों को हरा कर ही यह तेज प्राप्त किया है जिस से आप मेरा भी तिरस्कार कर रहे है। अच्छा मैं आप को दिव्य नेत्र देता हूं। उन से आप मेरे स्वरूप को देखिये । तब उन्होंने भगवान विष्णु रूप राम के विराट दर्शन किये । इस के पश्चात वे शर्म के मारे खिन्न होकर वन में चले गये । एक वर्ष पश्चात् जब उन्हें पितृगण ने देखा और उन्होंने कहा । वत्स ! तुम ने साक्षात् विष्णु के सामने जाकर जैसा वर्ताव किया, वह ठीक नहीं था वह तो तीनों लोकों में पूजनीय है। अब तुम जाकर वधु संरकृता नाम की-पवित्र नदी में स्नान करो । सतयुग में तुम्हारे प्रपितामह भृगु ने दीप्तोद नामक तीर्थ में बड़ी तपस्या की थी । उस में स्नान करने से तुम्हारा शरीर पुनः तेजस्वी हो जायेगा । ऐसा करने पर परशु-राम जी को पुनः वही तेज प्राप्त हुआ ।

. . न्तम महाभारत काल में महाराज शाल्व के साथ भीष्म का युद्ध होने के पश्चात् शाल्व दासी अम्बा की भीष्म के प्रति आसक्ति होना तथा भीष्म का अम्बा को स्वीकार न करना उधर शाल्व को भी त्याग देना ।

तब अम्बा श्री परशुराम जी की शरण में आई और उन से रक्षा की मांग की । तब वह भीष्म जी के पास गये और उन से अम्बा को स्वीकार करने को कहा । कई प्रकार से समझाने पर भी भीष्म जी ने इसे स्वीकार करने से इन्कार कर दिया । यहां तक कि परशुराम जी को कुपित होने पर दोनों योद्धा युद्ध करने को कूद पड़े । घनघोर वाण वर्षा हुई । कभी भीष्म उखड़ते और कभी परशुराम रोज सवेरे रात खुलने पर आरम्भ और रात होने पर बंद होता । इस प्रकार पूरे 23 तेईस दिनों तक युद्ध हुआ । दोनों की हार जीत का प्रश्न ही नहीं उठता था ।

तदनन्तर भीष्म जी को सोते हुए ब्राह्मण, पितर और देव आदि के दर्शन होकर परशुराम जी का कुरुक्षेत्र में युद्ध के लिये कहना और गंङ्गा जी की परशुराम जी से युद्ध न करने की प्रार्थना करना । उधर नारद जी के साथ पितर ऋषि स्वीक भी युद्ध भूमि में पहुंचे । तब इन्हें दोनों ओर से शांत करके युद्ध बन्द हुआ और भीष्म जी ने गुरु परशुराम जी के चरणों पर गिरकर क्षमा याचना की । तत्पश्चात् उन्होंने यज्ञों द्वारा सर्वदेवमय आत्म स्वरूप भगवान का भजन किया, उस में उन्होंने पूर्ण विधि से होता, गुरू, ब्राह्मण को दक्षिणा दी । यह सुन कर भारद्वाज के पुत्र द्रोण भी महेन्द्र पर्वत पर परशु राम जी को मिले और कहा द्विजश्रेष्ठ ! मैं धन की कामना से आप के पास आया हूं । यह सुनकर परशुराम ने कहा ।

शरीरमात्रमेवाद्य मया समवशेषितम् ।
अस्त्राणिवा शरीरं वा ब्रह्मन्नेकतमं वृणु ।।

तब द्रोण ने कहा-"भगवन् ! आप मुझे प्रयोग और उपसंहार की विधि सहित अपने सम्पूर्ण अस्त्र प्रदान करें । फिर परशु राम ने सम्पूर्ण अस्त्र-ब्रह्मास्त्र इसी प्रकार दान कर दिये और स्वयं **जम्बू द्वीप नेण गिरि पर्वत अम्बिका क्षेत्रशतद्रु नदी के किनारे** घोर तपस्या करने चले गये ।

यः कार्तवीर्यं निज धान रोषात्
त्रिः सप्त कृत्वः क्षितिपात्मजानपि ।
तं जामदग्नयं क्षितिभार नाशकं
नतोऽस्मि विष्णु पुरुषोतमं सदा ।।
(कृपपरशुरामश्च सप्तैचिर जीवना ।)

शतद्रु नदी के किनारे चलते समय पर्वती क्षेत्र में आते इन्होंने अपने ठहरने हेतु कुछ स्थान निश्चित किये क्योंकि इन स्थानों में कुछ ब्राह्मण रहते थे जिन्हें अपना अनुयायी बनाया । कुछ यज्ञादि कार्य भार भी इन्होंने सम्भाले । जो इस प्रकार हैं :

१) प्रथम स्थान— काव

२) दूसरा स्थान—मुमेल

३) तीसरा स्थान—निर्थ

४) चौथा स्थान—दत्तनगर

५) पांचवां सब से छोटा स्थान अम्बिका क्षेत्र नृमुण्ड नगरी जहां इन्होंने बहुत लम्बी अन्तिम तपस्या की जिस के उपरान्त कोई इतिहास मिल नहीं पाया।

ग्राम व डाकखाना निरमण्ड,
वाया रामपुर बुशैहर, ज़िला कुल्लू

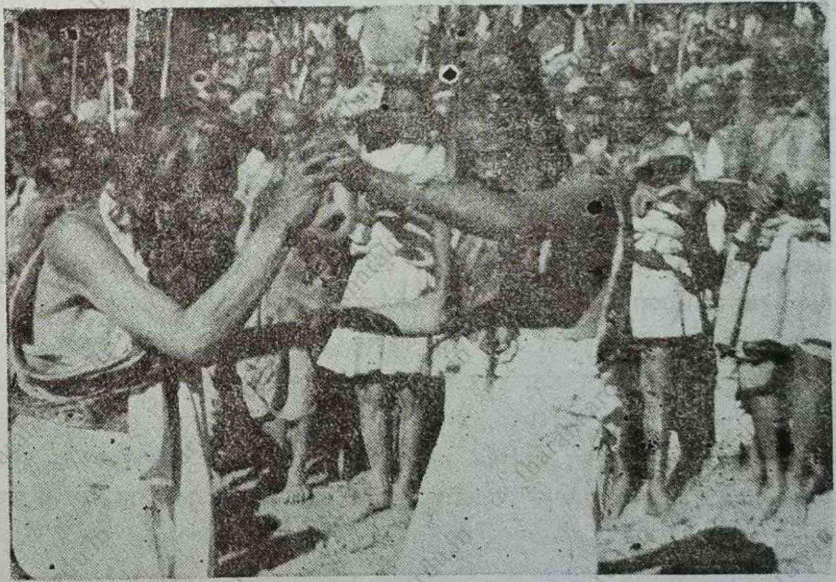

कमान्द (कुल्लू) में हारगी के अवसर पर देव खेल करते गुरु

रचनाधर्मिता और पहाड़ी भाषा : एक संदर्भ

O डॉ॰ पीयूष गुलेरी

परमसत्ता का द्योतक परमात्मा एक ऐसा रचनाकार है जिसने अपनी शाश्वत् रचना-कारिता के प्रमाण में सृष्टि स्वरूप अपने रचना-वैविध्य-कौशल का जीवन्त परिचय दिया है। उसका यह रचना-संसार इतना विविध और विचित्र है कि यदि मनुष्य जड़-जीव-जंगम के अनेकानेक स्वरूपों का निकटस्थ परिचय प्राप्त करने की उत्कण्ठा से चले तो न जाने कितने जन्म बीतने पर भी उसे सृष्टि के अनन्तत्त्व का बोध न हो। इस प्रकार उस सृष्टिकार ने अपने संकल्प और अंशमात्र की रचना प्रसारता में अपनी सर्वत्र, सार्वकालिक विद्यमानता को प्रमाणित कर दिया है।

यह बात निश्चित है कि रचयिता को अपनी रचना सर्वप्रिय होती है। अस्तु हमारे मत में उस परमेश्वर को भी यह सृष्टि अवश्य प्रिय होगी। उसकी विराट् सृष्टि के जड़-जीव और अन्यान्य प्राणियों में भी मात्र मनुष्य श्रेष्ठ है। स्यात् प्रभु ने मनुष्य के रूप में ही अपना प्रतिरूप देखा हो। कदाचित् इसी कारण जगन्नियन्ता ने मनुष्य को बुद्धि तत्त्व से संयोजित करके अन्य जीव-जन्तुओं की अपेक्षा उसके साथ पक्षपात का व्यवहार किया हो। फिर भी यह कितनी विलक्षण बात है कि संसार भर के सभी मनुष्यों की आकृतियां भिन्न हैं। यदि यह विभिन्नता, अनेकता और विविधता प्राणिमात्र की निजता, निज-सत्ता, स्वयं पूर्णता की परिचायक है तो उस विराट् का सार्वभौम स्वरूप प्राप्त करने के लिए उसकी समस्त सृष्टि में उसका निर्माणंश्च "योनि-लिङ्ग" के प्रतीक रूप में विद्यमान मिलता है। महाभारत में कहा भी गया है :—

न गदाङ्क न चक्राकं न पद्मांकंमियाः प्रजाः।
लिङ्गकं च भगाकं च तस्मात् शिव मयी प्रजाः ॥

भाव यह है कि उस प्रभु की गदा, चक्र और पद्म आदि का कोई चिन्ह उसकी रचना अथवा प्रजा में समान रूप से विद्यमान नहीं है। अस्तु मात्र लिङ्ग और भग की समरूपता में ही समस्त विश्व में उसकी विराट् एकता का प्रसार पाया जाता है। भग के प्रतीक रूप में उस

जगन्नियन्ता के संकल्प का प्रसार और लिङ्ग के ऊर्ध्वगामी रूप में अन्ततः ऊर्ध्वोन्मुखी रहने की प्रेरणा के दो प्रकाशमान कोण उजागर होते हैं।

जैसा कि हम कह आए हैं कि उस रचनाकार को अपनी सृष्टि और सृष्टि में भी विशेष कर मनुष्य प्रिय होगा। ठीक उसी प्रकार मनुष्यों में भी कवि अथवा कलाकारों को रचनाकारिता, विधायिनी और कारयित्री प्रतिभा से विभूषित करके परमेश्वर ने न केवल उन्हें विश्वभर के प्राणियों से विलक्षण बनाया है प्रत्युत अपने रचनाधर्मी स्वरूप को उन्हीं में प्रत्यारोपित भी किया है।

अस्तु, उस विराट् रचनाकार की सृष्टि से आह्लादित-प्रेरित होकर संसार के सभी रचनाकार अपनी दिव्यानुभूतियों से ऐसी सृष्टि कर जाते हैं कि भावी पीढ़ियां उनकी प्रतिभा को देखकर चमत्कृत हो जाती हैं। सृष्टि के होने-न होने की चिंता में बहुत कम लोग ध्यान देते हैं क्योंकि उन्हें अपनी दिनचर्या के कार्यों से समय ही कहां मिलता है? जबकि कवि-कलाकार कभी अन्तर्मुखी तो कभी बहिर्मुखी होकर उस महान् रचनाकार के विराट्-स्वरूप एवं रचना-संसार से नित नई प्रेरणा अर्जित करके नव-नव रचनाओं का प्रणयन करता रहता है। जिस प्रकार परमेश्वर की विश्वविविधता को "भग और लिङ्ग" रूप की समरूपता में समेट कर देखा जा सकता है ठीक वैसे ही विश्व भर के कवियों और रचनाकारों के रचना-वैविध्य को भाषाओं का व्यवधान भी आड़े नहीं आता। समस्त विश्व के कलाकारों की समरूपा अनुभूतियों को मानो विभिन्न भाषाओं ने विविध वाणियों से मण्डित किया है परन्तु वे भी उस परमेश्वर की अनेकता में एकता के समान, प्रकृति के रहस्यमय स्वरूपों, प्राणिमात्र के कल्याण की भावनाओं, दिव्यगुणों के प्रसार की प्रेरणाओं, समाज में से दुर्गुणों और कुरीतियों के निवारण की चिंताओं रूपी ऋचाओं से परिपूर्ण हैं।

अस्तु, कवि अथवा रचनाकार भी प्रारंभ में अपनी रचनाओं का प्रचार-प्रसार करता हुआ अन्ततः ऊर्ध्वोन्मुखी होता है। इसे यों भी कह सकते हैं कि लौकिकता से अलौकिकता तथा प्रसारात्मकता से प्रारंभ करके ऊर्ध्वगामी होते रहने के प्रयत्न में शिवरूप में विलीनता, जहां न शब्द का बंधन है, न भाषाओं का, समरूपता और आनन्द ही आनन्द।

असीमानन्द के इस महोदधि में पहाड़ी-भाषा गंगोत्री के समान है। यह अपने वर्तमान स्वरूप में पहुंचने से पूर्व लोकगीतों और लोकगाथाओं की लघु-लघु सरिणियों में प्रवाहित होती रही है। सन् १९६६ ईसवी में विशाल हिमाचल के निर्माण के पश्चात् डॉ॰ डॉ॰ यशवंत सिंह परमार और सुकवि लाल चन्द प्रार्थी चांद कुलुवी' जैसे राजनेताओं तथा निज-भाषा-गौरव के प्रेम से मण्डित त्रिगर्त-भूमि के साहित्यकारों के प्रयत्न से पहाड़ी-भाषा में भी अन्य शिष्ट-भाषाओं के समान रचनाएं होने लगीं। पहाड़ी-भाषा के रचनाकारों ने अपनी रचना-क्षमता का अद्भुत परिचय देते हुए इस के साहित्य-संसार को उत्तरोत्तर श्री-सम्पन्न किया। परिणामस्वरूप प्रेरणा

की प्रत्येक अंगड़ाई नवोर्मियों की भांति लासोन्मत्त दिखने लगी। पहाड़ी भाषा में रचनाकारों की लहर-पर-लहर ने उल्लासमय वातावरण का सृजन किया है। यह सृजन ऊपर विवेचित शिव के प्रजा-प्रतीक चिन्ह-रूप की दृष्टि से अपनी प्रसारावस्था से वेगमान है, रचनाकार के नयनोन्मीलन का प्रथमोत्थान।

"अपर्णा–श्री"
आवास बस्ती, धर्मशाला (हि. प्र.)

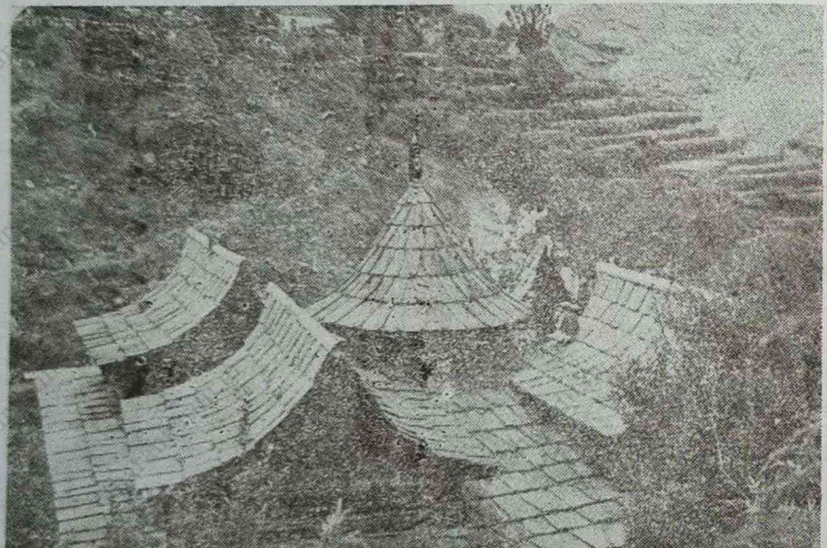

खड़ाहन का जीशर महादेव मन्दिर

समीक्षा

हिमाचल प्रदेश के ब्रज कवि

'हिमाचल प्रदेश के ब्रजकवि' शीर्षक से ही स्पष्ट है कि इस कृति में उन हिमाचली कवियों का उल्लेख किया गया है जिन्होंने ब्रज-भाषा में काव्य रचना की है। डॉ० मनोहर लाल के इस प्रयास से और इस क्षेत्र में अन्यत्र हो रहे शोध-अनुसन्धान से निस्संकोच कहा जा सकता है कि हिमाचली ब्रज-काव्य आज अन्धकार और उपेक्षा से निकलकर अपनी उपस्थिति रेखांकित करने में पूर्णतः समर्थ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने 'इतिहास' में संभवतः हिमाचली ब्रज साहित्य को अपर्याप्त स्त्रोतों-साधनों अथवा हिमाचल की पंजाब में अन्तर्भुक्ति के कारण स्थान नहीं दे पाए थे। इस अभाव की कुछ पूर्ति की थी- डॉ० चन्द्रकान्त बाली ने-'पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास' लिखकर जिसमें चरपट नाथ, मंगल तथा गणेश सिंह वेदी जैसे हिमाचली कवियों का उल्लेख है। आलोच्य कृति में, सम्पादक ने, इसी दिशा में और अधिक गंभीर तथा व्यापक खोजबीन करके न केवल अन्यानेक कवियों का परिचयात्मक विवरण दिया है अपितु इस क्षेत्र में विद्यमान् अनेकानेक संभावनाओं का द्वार भी खोला है।

समीक्ष्य कृति स्थूलतः दो भागों में विभक्त है : प्रथम भाग में मनोहर ने चरपट नाथ उत्तम रिषदेव, काशीराम, गणेशसिंह आदि उन कवियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है जो हिमाचल में पले-बढ़े-मरे और दूसरे भाग में तीन 'आगन्तुक कवियों' - मौलाराम,दत्त तथा ग्वाल के व्यक्तित्व-कृतित्व का विवरण दिया गया है जिन्होंने अन्यत्र से हिमाचल में आकर काव्य-रचना की।

आरंभ में जन्म-मृत्यु विषयक सूचना, कृतित्व की जानकारी, फिर लेखक का मूल्यांकन और अन्त में लेखक की कतिपय चुनिंदा रचनाओं के उद्धरण देने की शैली आद्यन्त अपनाई गई है जो एक ओर कवि की रचनाओं से साक्षात् का अवसर प्रदान करती है तो दूसरी ओर मनोहर लाल के कवि-विषयक निष्कर्षों को रेखांकित करती है। उदाहरण के लिए वैद्य, ज्योतिर्विद, बहुपठित, 1902 में जन्में 'कवि बृजराज' का परिचय देते हुए सम्पादक ने उनकी विषय-वस्तु को छः भागों में बांटा है। रामकाव्य, नीतिकाव्य, मंगलकाव्य, प्रशस्तिकाव्य, भक्तिकाव्य तथा प्रकीर्ण। तदुपरान्त हिमाचली लोकाचारों तथा लोक संस्कृति को अपनी रचनाओं में स्थान देने वाले इस कवि की साहित्यिक विशेषताओं का विवरण इस प्रकार दिया गया है। "कवि

बृजराज बृजभाषा में मुक्तक काव्य लिखने वाले साहित्य-मर्मज्ञ तथा भाषा के अधिकारी कोविद प्रतीत होते हैं। ये प्रबन्ध रचना में भी कुशल थे। इनकी काव्यकला तथा भाषा में कवि मंगल तथा गणेशसिंह वेदी जैसी सफाई है, रिषदेव डोगरा जैसी अनगढ़ता नहीं। इन्होंने अपने ग्रन्थों में विविध छंदों का निर्वाह भी ढंग से किया है। छन्दों का विषयानुकूल बड़े विवेक से चयन किया है। केशव की तरह छन्दों को प्रदर्शन की वस्तु नहीं बनाया। इन्होंने कवित्त, सवैया तथा चौपाई आदि मधुर छन्दों को प्रयोग अधिक किया है। पर इनकी रचनाओं में छन्द-शैथिल्य भी खटकता है। (पृ० 115-116)

यद्यपि कृति में इक्कीस कवि संकलित हैं तथापि बिस्तार की दृष्टि से गणेश सिंह वेदी को लगभग पच्चीस पृष्ठ मिले हैं, बृजराज को उन्नीस तथा पण्डित जगतराम शर्मा शास्त्री को सत्तरह। महाराजा बलदेव सिंह को मात्र डेढ़ पृष्ठ में समेटा गया है जबकि काशीराम तथा कवि रुद्र को दो-दो पृष्ठों में। जाहिर है कि सम्पादक का तत्कालिक उद्देश्य अधिकाधिक कवियों को पुस्तक में स्थान देकर यह प्रमाणित करना प्रतीत होता है कि हिमाचल में बृज-भाषी काव्य रचना का क्षेत्र बांझ नहीं है और यदि चेष्टा की जाए तो इस क्षेत्र में अप्रत्याशित सामग्री सामने आ सकती है।

प्रसंगवश. समीक्ष्य कृति में मंगल, लक्खण, मनसुख जैसे काव्यानुवादकों का भी उल्लेख है जिन्होंने संस्कृत से अनुवाद करने में अपनी पैनी पकड़ का परिचय दिया है। 'दिलीप रंजनी' (उत्तम), 'रामायण-छंद' (रिषदेव डोगरा), 'लीला सागर' (गंगादत्त), 'रामगीता' (काशीराम), 'रामरसलहरी' (बृजराज) आदि ब्रज-रचनाओं पर हिमाचल ही नहीं, समूचा हिन्दी साहित्य गर्व कर सकता है।

पुस्तक के अन्त में लेखक ने सहायक-ग्रन्थों में हिन्दी-पंजाबी की हस्तलिखित तथा प्रकाशित अनेक पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों की सूची दी है जो मनोहरलाल की शोध-वृत्ति, परिश्रम, लगन को रेखित करते हुए अन्य जनों को भी इस क्षेत्र में डुबकी लगाने के लिए अनुप्रेरित करती है। मुझे लगता है कि मनोहर को भविष्य में ऐसे फुटकर (पर प्रशंसनीय) प्रयास के स्थान पर किन्ही एक-दो या तीन अथवा अधिक कवियों पर प्रामाणिक, विस्तृत सामग्री प्रस्तुत करने का प्रयास करना चाहिए, ताकि न केवल उन्हें अपितु पाठकों को भी कुछ ठोस उपलब्ध हो।

पुस्तक	:	हिमाचल प्रदेश के ब्रज कवि
सम्पादक	:	डॉ० मनोहर लाल
मूल्य	:	60-00 रुपये
प्रकाशक	:	पुस्तकायन. 2/4240 ए, अंसारी रोड, नई दिल्ली-11002

O गुलशन कुमार

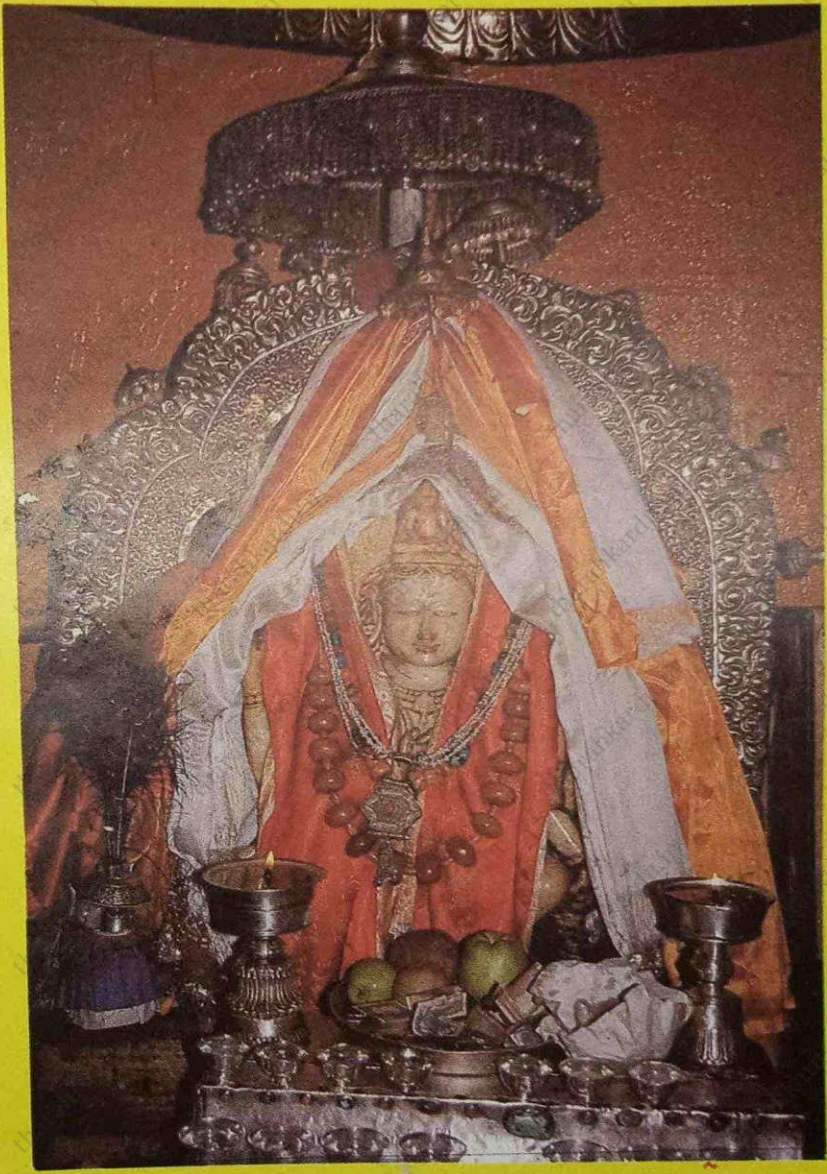

त्रिलोक नाथ मन्दिरः—

लाहुल में शिव/अवलोकितेश्वर मूर्ति,
छाया-हाकम चन्द शर्मा (भाषा-संस्कृति विभाग के सौजन्य से)

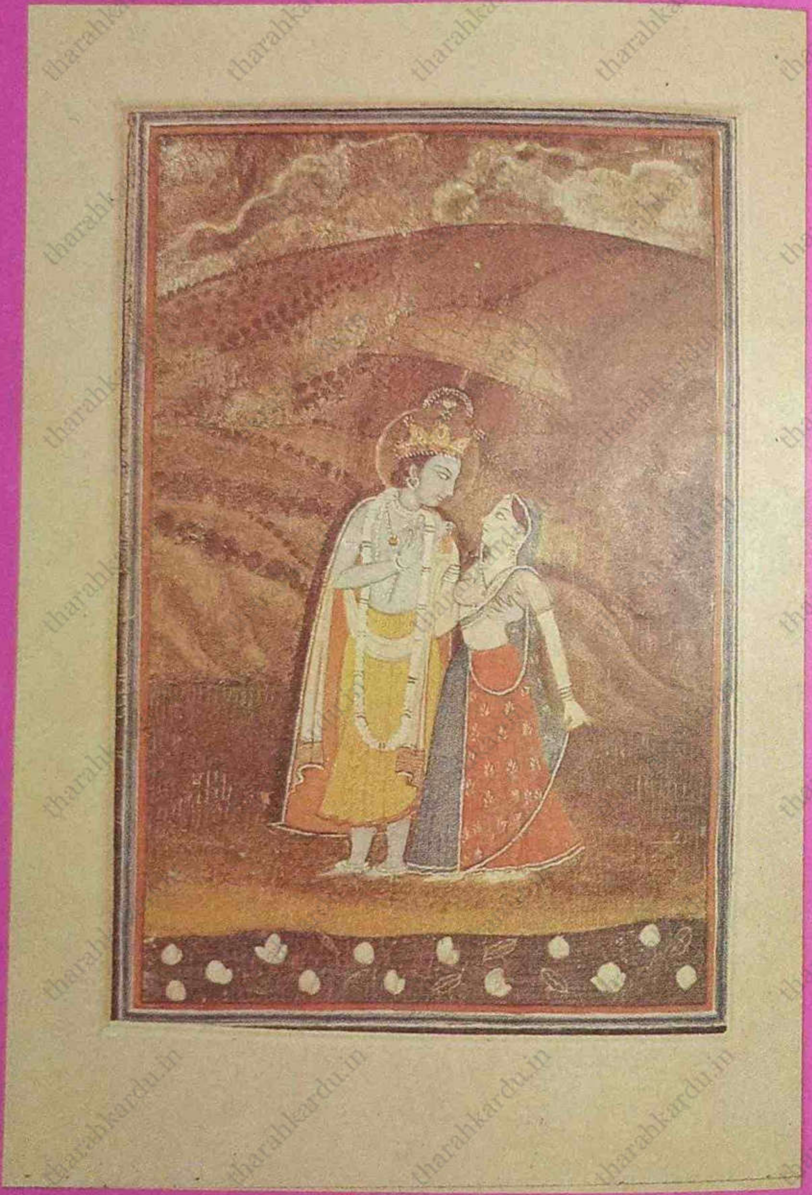

राधा-कृष्ण

(चम्बा शैली: 19 वी शताब्दी)
छाया- हाकम चन्द शर्मा भूरि सिंह संग्रहालय चम्बा,

सचिव हिमाचल कला संस्कृति और भाषा अकादमी, शिमला द्वारा प्रकाशित तथा न्यूप्रिन्टर्स ग्रीन फील्ड कोटेज शिमला 171001 फोन नं. 6660, द्वारा मुद्रित